मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 127 ● वर्ष 14, अंक 3 ● मई 2024 ● दस रुपये

विशेष अंक
20 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मई दिवस और मौजूदा दौर में मज़दूर वर्ग के समक्ष चुनौतियाँ 5

विषमता दूर करने के कांग्रेस के ढपोरशंखी वायदे और मोदी की बौखलाहट 6

RWPI द्वारा लोकसभा चुनाव में रणकौशलात्मक भागीदारी की रिपोर्ट 7

जनता में मोदी सरकार विरोधी लहर के मद्देनज़र

लोकसभा चुनाव में ईवीएम, केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) और न्यायपालिका से सहयोग के भरोसे मोदी सरकार

18वीं लोकसभा के लिए हो रहे आम चुनावों की वोटिंग का छठवाँ दौर होने वाला है। वैसे तो 44 दिनों में चुनावों को फैलाकर कराने का चुनाव आयोग का निर्णय ही सन्देहास्पद है क्योंकि यह सरकार में बैठी पार्टी को अन्य पार्टियों के मुकाबले कहीं ज़्यादा जोड़-तोड़ करने का मौक़ा देता है। सम्भवत: जब 'मज़दूर बिगुल' का मई अंक कुछ देरी से आपके हाथों में पहुँचेगा, तब तक यह छठवाँ दौर पूरा हो चुका होगा। इस दौर के आते-आते, अगर गोदी मीडिया और उसके फ़र्ज़ी चुनाव विश्लेषकों को छोड़ दें, तो सभी वास्तविक और निष्पक्ष चुनाव विश्लेषक बता रहे हैं कि भाजपा अपने बूते बहुमत की संख्या यानी 272 सीटों तक नहीं पहुँच सकती, यहाँ तक कि भाजपा-नीत गठबन्धन यानी राष्ट्रीय (जन) तान्त्रिक गठबन्धन भी इस बहुमत चिह्न तक पहुँचता नज़र नहीं आ रहा है। वैसे भी अब राजग में भाजपा के अलावा दुअन्नी-चवन्नी जैसे दल ही बचे हैं, जिन्हें राजनीतिक दल भी मुश्किल से ही कहा जा सकता है। वे जातिगत आधार पर सौदेबाज़ी के लिए बने प्रेशर ग्रुप्स कहे जा सकते हैं जिनकी अपने आप में कोई औक़ात नहीं है और वे आपराधिक हद तक मौक़ापरस्त लोगों से भरे

सम्पादकीय अग्रलेख

हुए हैं। इसके अलावा, भाजपा ने जिन दलों को तोड़कर उनके एक हिस्से को नयी पार्टी बना दिया (जैसे शिवसेना-शिन्दे गुट और एनसीपी-अजित पवार गुट), वे "पार्टियाँ" भाजपा के साथ हैं, या नीतीश कुमार जैसे अव्वल दर्जे के सत्तालोलुप अवसरवादी दलाल भाजपा के साथ गठबन्धन में हैं। आप स्वयं देखिए, आपको पता चल जायेगा कि ऐसे दलों के अलावा भाजपा-नीत राजग में अब कुछ नहीं बचा है। ऐसे दलों या व्यक्तियों का अपना स्वतन्त्र कोई अस्तित्व ही नहीं है। उनका राजनीतिक करियर ही भाजपा के बिना अब समाप्त है। ऐसे में, वास्तव में राजग में भाजपा के अलावा कुछ ख़ास बचा नहीं है।

अब जबकि राजग के लिए भी बहुमत के चिह्न तक पहुँचना तमाम निष्पक्ष और अनुभवी चुनाव विश्लेषकों के अनुसार मुश्किल दिख रहा है, तो सत्ता के लिए पगलायी मोदी-शाह जोड़ी किन तरक़ीबों के भरोसे है?

पहला, उनकी पुरानी तरक़ीब: *मुसलमान, पाकिस्तान आदि का नकली भय पैदाकर निकृष्ट कोटि का साम्प्रदायिक प्रचार और बयानबाज़ी और अन्धराष्ट्रवाद की फ़र्ज़ी लहर फैलाना;* **दूसरा,** *केचुआ (केन्द्रीय चुनाव आयोग) के ज़रिये, जो कि मोदी-शाह के लोगों का ही अड्डा बन चुका है, ईवीएम के आधार पर चल रही चुनाव की निहायत सन्देहास्पद प्रक्रिया और वोटिंग के आँकड़ों में हेर-फेर कर चुनाव के नतीजों में गड़बड़ी करना;* **तीसरा,** *कई निर्वाचन मण्डलों में विशेष तौर पर मुसलमानों और कुछ अन्य समुदायों के लोगों के नाम वोटर लिस्ट से हटवाना जो भाजपा को वोट नहीं करते रहे हैं;* और **चौथा,** *पुलिस व सैनिक व अर्द्धसैनिक बलों के भीतर फ़ासीवादी घुसपैठ*

(पेज 10 पर जारी)

चुनाव आते ही मोदी के साम्प्रदायिक बयानों, झूठों और ग़लतबयानियों की अन्धाधुन्ध बमबारी के मायने

● नौरीन

मंगलसूत्र, मुसलमान, मछली, मुस्लिम लीग, मेनिफ़ेस्टो ऑफ़ कांग्रेस! ये वो चन्द शब्द हैं जो पिछले कुछ दिनों से प्रधानमन्त्री की ज़ुबान पर छाये हुए हैं। इन दिनों प्रधानमन्त्री मोदी का ऐसा शायद ही कोई भाषण हो जिसमें इन शब्दों का ज़िक्र न हुआ हो। जो प्रधानमन्त्री 10 साल पहले महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार की बातें करते नहीं थकते थे, आज उनके मुँह से महँगाई का 'म', बेरोज़गारी का 'ब', भ्रष्टाचार का 'भ' ऐसे ग़ायब हुआ है जैसे गधे के सिर से सींग ग़ायब होता है।

पहले चरण का चुनाव ख़त्म होते ही प्रधानमन्त्री ने अपने भाषणों में मुसलमानों पर हमले तेज़ कर दिये हैं। प्रधानमन्त्री को अच्छे से पता है कि इस बार के चुनाव में उनके जुमले नहीं चल रहे हैं। **लोगों को समझ आ गया है कि 'मोदी की गारण्टी' का मतलब बेरोज़गारी की गारण्टी, महँगाई की गारण्टी, भ्रष्टाचार की गारण्टी, भुखमरी की गारण्टी है।**

अपने दस साल के कार्यकाल में मोदी सरकार ने जनता की ज़िन्दगी को बद से बदतर बनाने का काम किया है। आम मेहनतकश जनता पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ लाद कर विजय माल्या, मेहुल चौकसी जैसे पूँजीपतियों का कर्ज़ा माफ़ करने का काम किया है। जनता से किये हुए वायदों को पूरा करने में ये सरकार पूरी तरह से विफल रही है। यही कारण है कि फ़ासीवादी मोदी सरकार चुनाव दर चुनाव जाति-धर्म, मन्दिर-मस्जिद का मुद्दा उठाकर अपनी चुनावी नैया पार करने की कोशिश करती रही है।

21 अप्रैल को राजस्थान के बांसवाड़ा में "प्रधानसेवक" ने मनमोहन सिंह के जिस बयान का हवाला देकर इस चुनाव में अपनी तरफ़ से साम्प्रदायिक बयानों की औपचारिक शुरुआत की थी, वह तथ्यात्मक रूप से उतना ही सच था जितना 15 लाख खाते में आने की बात सच थी! **अगर "प्रधानसेवक" *इण्टायर पॉलीटिकल साइंस* के अलावा किसी और विषय में पढ़े होते तो शायद मनमोहन सिंह के बयान का इस तरीके से विश्लेषण नहीं करते! खैर! "प्रधानसेवक" हैं ही झूठ**

(पेज 14 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

मोदी के साम्प्रदायिक बयानों, झूठों और ग़लतबयानियों की अन्धाधुन्ध बमबारी के मायने

(पेज 14 से आगे)

पकड़ बनी रहती है और साथ ही देश के पूँजीपति वर्ग को संघ परिवार और भाजपा की मौजूदगी की ज़रूरत भी दीर्घकालिक मन्दी के दौर में बनी रहेगी। यही वजह है कि स्वयं पूँजीपति वर्ग कांग्रेस या किसी गठबन्धन सरकार को संघ परिवार या भाजपा के ख़िलाफ़ कोई ख़ास कार्रवाई करने या फ़ैसलाकुन क़दम उठाने की इजाज़त नहीं देगा और यही पूँजीपति वर्ग कांग्रेस समेत अन्य सभी पूँजीवादी पार्टियों का आधार है। यही तो कारण है कि बजरंग दल पर बैन लगाने का वायदा करने के बावजूद कर्नाटक में कांग्रेस सरकार सत्ता में आने के बाद अपने वायदे से मुकर गयी।

इसीलिए आज देश के मज़दूरों-मेहनतकशों को सिर्फ़ भाजपा को हराने के लिए किसी चुनावबाज़ पार्टी का पिछलग्गू नहीं बनना चाहिए। मज़दूरों को अपनी इन्क़लाबी पार्टी खड़ी करनी चाहिए। एक ऐसी स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पार्टी के साथ जुड़ना चाहिए जो आर्थिक व राजनीतिक रूप से मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी पर आधारित हो। आज मेहनकश जनता को अपनी मज़दूर पार्टी का विकल्प खड़ा करने की ज़रूरत है जो भाजपा का मुक़ाबला न सिर्फ़ चुनावों में करे बल्कि आपके गली-मोहल्लों, सड़कों पर भी इन फ़ासिस्टों को खदेड़े। चुनावों में भाजपा को हराना निश्चय ही एक तात्कालिक रणकौशलात्मक आवश्यकता है, लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि जनता की क्रान्तिकारी ताक़तों को अपने आपको गोलबन्द और संगठित करने का एक अवसर मिल सके। इसके लिए भी जहाँ मज़दूर पार्टी का उम्मीदवार हो, वहाँ जनता को उसे विजयी बनाना चाहिए।

आज मेहनतकश अवाम के सामने बेशक यह सवाल मौजूद है कि उनका विकल्प क्या हो। क्या वाक़ई में मज़दूरों की अपनी क्रान्तिकारी पार्टी मौजूद है जो मोदी सरकार की साम्प्रदायिक नीतियों का मुँहतोड़ जवाब दे और सच्चे अर्थों में मेहनतकश-मज़दूरों के नुमाइन्दगी करे? इस चुनाव में धनबल-बाहुबल का जो खेल चल रहा है उसके शोर-शराबे से बाहर निकलकर इत्मीनान से सोचें तो हम पायेंगे कि इस लोकसभा चुनाव में पाँच सीटों, उत्तर-पूर्वी दिल्ली, उत्तर-पश्चिमी दिल्ली, अम्बेडकरनगर, पुणे और कुरुक्षेत्र में **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)** के रूप में में मज़दूरों-मेहनतकश का स्वतन्त्र और क्रान्तिकारी पक्ष बिल्कुल मौजूद है। यह पार्टी सिर्फ़ चुनावों तक सीमित नहीं है। इसका मक़सद सिर्फ़ चुनाव जीतना नहीं बल्कि दूरगामी तौर पर एक ऐसी व्यवस्था के लिए संघर्ष करना है जिसमें देश के सभी संसाधन पर मज़दूरों का राज हो। यानी कि एक समाजवादी व्यवस्था का निर्माण उसका अन्तिम लक्ष्य है। इन सीटों पर मेहनतकश जनता को एकजुट हो मज़दूर पार्टी को जिताने का प्रयास करना चाहिए और इसके ज़रिये भाजपा को शिकस्त देने का प्रयास करना चाहिए। यह प्रयास एक बार में सफल हो या न हो, मज़दूर वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता को स्थापित करने में यह निश्चय ही योगदान करेगा। अन्य सभी सीटों पर भाजपा की हार को सुनिश्चित करना, आम मेहनतकश जनता का कार्यभार है।

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं।
नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के तहत ईवीएम के ख़िलाफ़ देशभर में अभियान!

● केशव

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के तहत ईवीएम पर रोक लगाकर बैलट पेपर के माध्यम से चुनाव कराने को लेकर पिछले 15 मार्च से देश के अलग-अलग इलाक़ों में सघन अभियान चलाया जा रहा है। इस दौरान मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, उत्तराखण्ड, राजस्थान, महाराष्ट्र, दिल्ली, हरियाणा व चण्डीगढ़ में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा समेत अन्य क्रान्तिकारी संगठनों द्वारा यह अभियान चलाया गया। अभियान के दौरान यह बात समझ आयी कि एक बड़ी आबादी ईवीएम में होने वाली गड़बड़ी से वाक़िफ़ है और उनमें ईवीएम के इस्तेमाल को लेकर गहरा असन्तोष है। और हो भी क्यों न, ईवीएम के इस्तेमाल पर पहले भी कई सवाल उठ चुके हैं। ज़ाहिरा तौर पर इस अभियान के दौरान भाजपा की पोलपट्टी खुलते देख संघ के स्थानीय गुण्डों ने कई जगहों पर अवरोध डालने की भी कोशिश की। आन्ध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम में इन गुण्डों ने ऐसे ही एक अभियान के दौरान दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के सदस्यों पर एक कायराना हमला कर दिया। हालाँकि इन संघी लम्पटों को भी दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के सदस्यों द्वारा माकूल जवाब दिया गया।

यह पहली बार नहीं है जब ईवीएम की विश्वसनीयता पर सवाल उठाया जा रहा है। पहले भी कई बार ईवीएम के इस्तेमाल पर सवाल खड़े हो चुके हैं। हाल में हुए विधान सभा के चुनावों के नतीजों के बाद जब सीधे-सीधे इसका इस्तेमाल सन्देह के घेरे में आ गया है तो सर्वोच्च न्यायालय से लेकर चुनाव आयोग तक चुप्पी साधे बैठा है। यह एक तरफ़ जहाँ ईवीएम पर सन्देह को और भी अधिक गहरा करता है, वहीं दूसरी तरफ़ यह भी दिखाता है कि न्यायपालिका और चुनाव आयोग दोनों ही आज संघ की गोद में जा बैठे हैं। अभी हाल में ही सर्वोच्च न्यायालय ने वीवीपैट से वोटों की सौ प्रतिशत मिलान की अपील को सिरे से ख़ारिज कर दिया। क्यों? इसके लिए बस यह तर्क दिया गया कि जनता को ज़्यादा शक़ नहीं करना चाहिए और यह चुनाव आयोग के लिए काफ़ी भारी-भरकम काम बन जायेगा! यह किस प्रकार का तर्क है? **पहली बात तो यह है कि जनता को शक़ करने का पूरा अधिकार है और जनता द्वारा इस प्रकार सवाल किया जाना ही पूँजीवादी व्यवस्था में उसके सीमित जनवादी अधिकारों को बचा सकता है। दूसरी बात यह कि अगर इसमें ज़्यादा वक़्त भी लगे तो भी एक बुनियादी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया की पारदर्शिता और विश्वसनीयता को बरक़रार रखने के लिए यह किया जाना चाहिए। जब साल भर में नेताओं-नौकरशाहों के ऐशो-आराम, ऐय्याशी और सुरक्षा पर सरकारें अरबों रुपये ख़र्च कर सकती है, तो जनता के इस बुनियादी जनवादी अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए कुछ करोड़ रुपये क्यों नहीं ख़र्च किये जा सकते?** आज ईवीएम के ज़रिये आम नागरिकों के सबसे बुनियादी जनवादी अधिकारों में से एक पर, यानी एक पारदर्शी चुनाव में वोट डालकर अपने प्रतिनिधि को चुनने के जनवादी अधिकार पर, एक अन्धेरगर्दी भरी डाकाज़नी की जा रही है।

देश के कई जाने-माने वकील, अवकाशप्राप्त न्यायाधीश, विधिवेत्ता, चुनाव विशेषज्ञ और विपक्षी पार्टियाँ ईवीएम की विश्वसनीयता पर लगातार सवाल उठाती रही हैं, लेकिन गोदी मीडिया की कृपा से उनकी बातें आम लोगों तक नहीं पहुँच पातीं। दूसरी ओर, चुनाव आयोग की बेहद कमज़ोर व अविश्वसनीय सफ़ाइयों का जमकर प्रचार किया जाता है। बुनियादी सवालों को नज़रों से ओझल कर दिया जाता है। **ग़ौरतलब है कि ईवीएम पर सबसे पहले भारतीय जनता पार्टी ने ही सवाल उठाया था।** पार्टी के एक नेता जी वी एल नरसिंहा राव ने 2010 में 'डेमोक्रेसी ऐट रिस्क, कैन वी ट्रस्ट अवर इलेक्ट्रॉनिक मशीन' शीर्षक एक पुस्तक लिखी थी जिसकी प्रस्तावना लालकृष्ण आडवाणी ने लिखी थी। इस पुस्तक में भी यही बात लिखी थी कि ईवीएम का इस्तेमाल सुरक्षित और चूकरहित क़तई नहीं हो सकता। हाल में ही यह ख़बर आयी कि ईवीएम बनाने वाली कम्पनी 'भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड' के निदेशक के रूप में भाजपा के चार पदाधिकारी और नामांकित व्यक्ति काम कर रहे हैं। ऐसे में ईवीएम का प्रयोग सीधे ही शक़ के घेरे में आ जाता है। लेकिन इस सवाल पर चुनाव आयोग और मोदी सरकार बिल्कुल चुप हैं।

इसी से जुड़ा एक सनसनीखेज़ मुद्दा यह है कि निर्माण स्थल से चुनाव आयोग तक पहुँचने के बीच कुछ उन्नीस लाख ईवीएम मशीनें "ग़ायब" हो गयीं! ऐसा भला कैसे हो सकता है? बिना सरकारी मशीनरी की मिलीभगत के यह असम्भव है। इनके दुरुपयोग का सन्देह इस तथ्य से और भी पक्का हो जाता है कि विगत चुनावों के दौरान ईवीएम मशीनों से लदी भाजपाइयों या सरकारी अधिकारियों की कई गाड़ियाँ आम लोगों और विभिन्न विपक्षी दलों के कार्यकर्ताओं द्वारा पकड़ी जा चुकी हैं। इन तथ्यों के आधार पर हम कैसे ईवीएम की विश्वसनीयता पर सवाल न खड़ा करें? और क्यों आज आम मेहनतकश आबादी को ईवीएम को हटाकर बैलट पेपर से चुनाव कराने के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिए? आज मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए यह ज़रूरी है कि वे अपनी एकजुटता दिखाते हुए ईवीएम के विरोध में जनआन्दोलन खड़ा करें।

यह सच है कि मात्र ईवीएम के हटने से ही यह व्यवस्था आम जनता के सच्चे प्रतिनिधियों के हाथों में नहीं आ जायेगी और जनता का वास्तविक जनतन्त्र बहाल नहीं हो जायेगा। पूँजी की सत्ता के समूल नाश के साथ ही यह सम्भव है और यह लड़ाई यक़ीनन एक लम्बी लड़ाई है। लेकिन फिर भी मौजूदा व्यवस्था में एक पारदर्शी जनवादी चुनाव हमारा बुनियादी अधिकार है। इतिहास बताता है कि जनवादी अधिकारों की ज़मीन पर खड़े होकर ही जनता अपने तमाम आर्थिक व सामाजिक अधिकारों और अन्ततः व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई ज़्यादा बेहतर तरीक़े से लड़ सकती है। इसीलिए ईवीएम हटाकर एक पारदर्शी चुनाव प्रक्रिया को सुनिश्चित करना हमारे लिए बेहद ज़रूरी है।

ईवीएम के ख़िलाफ़ चलाये जा रहे अभियानों के बाद एक चीज़ जो साफ़ तौर पर दिखायी दी, वह यह है कि इस सरकार ने अपनी नीतियों के ज़रिये अपने पूँजीपरस्त और जनविरोधी चरित्र को जितना बेपर्द किया है उससे कहीं ज़्यादा इन्होंने अपने तानाशाहाना राज को ईवीएम में धाँधली कर उजागर कर दिया है। आम जनता का एक हिस्सा मोदी सरकार के इस खेल को समझ चुका है लेकिन गोदी मीडिया की गोदी में सिर रखकर सोने वाली आबादी और अन्धभक्तों की ज़मात को छोड़ भी दिया जाये तो अब भी एक बड़ी आबादी ऐसी है जो मोदी सरकार के द्वारा ईवीएम में धाँधली से या तो अनभिज्ञ है या फिर वे ईवीएम की विश्वसनीयता पर सवाल खड़ा करने में अब भी सन्देह के घेरे में ही हैं। इसलिए आज क्रान्तिकारी ताक़तों को इस अतिसीमित जनवादी अधिकर के हनन के ख़िलाफ़ आम जनता को एकजुट, गोलबन्द और संगठित करना होगा। साथ ही यह माँग उठानी होगी कि तत्काल ईवीएम को पूर्ण रूप से ख़ारिज कर बैलट पेपर से चुनाव कराये जायें।

अ टेल ऑफ़ टू सिटीज़ (दो शहरों की कहानी): सूरत और इन्दौर की लोकसभा सीट जीतने के लिए भाजपा का षड्यन्त्रकारी हथकण्डा

● विवेक

यह सबसे अच्छा समय था,
यह सबसे बुरा समय था,
यह बुद्धिमत्ता का युग था,
यह मूर्खता का युग था,
यह विश्वास का युग था,
यह सन्देह का युग था,
यह प्रकाश का दौर था
यह अन्धकार का दौर था,
यह आशा का वसन्त था,
यह निराशा का शिशिर था,
हमारे सामने सबकुछ था,
हमारे सामने कुछ नहीं था,
हम सीधे स्वर्ग के रास्ते पर थे,
हम दूसरी ओर भी जा रहे थे
– संक्षेप मे,
यह समय आज के समय जैसा
इतना हूबहू था कि,
इसके कुछ सबसे ज्यादा शोर मचाने वाले हुक्मरानों ने,
इसके अच्छाई और बुराई के सबसे ऊँचे दर्जे का पर्याय माने जाने के लिए जोर दिया था

(चार्ल्स डिकेंस के उपन्यास
'अ टेल ऑफ टू सिटीज़' से)

यह बात अब तथ्य के तौर पर स्थापित हो चुका है कि बेरोज़गारी, महँगाई, शिक्षा, चिकित्सा, आवास आदि बुनियादी सवालों पर मोदी सरकार फ़ेल है। यही वजह है कि वह नये सिरे से साम्प्रदायिक आधार पर आम आबादी को बाँटने का काम कर रही है। प्रधानमन्त्री मोदी अब चुनावी रैलियों में अपनी सरकार की उपलब्धियाँ भी नहीं गिना पा रहे हैं, घूम फिर कर अपनी हर चुनावी सभा में मोदी हिन्दुत्व की रक्षा के वायदे, मुस्लिम विरोधी बयान और कांग्रेस के मैनीफ़ेस्टो की अपनी अनोखी झूठी व्याख्याओं व ग़लतबयानियों तक सिमट गये हैं। लेकिन इसके बावजद भी भाजपा इस चुनाव में अपने विजय को लेकर आश्वस्त नहीं है। और शायद यही कारण है कि सूरत और इन्दौर की लोकसभा सीटों पर साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति के तहत भाजपा ने अपनी जीत सुनिश्चित कर ली। यह पूरा घटनाक्रम 90 के दशक की मसाला हिन्दी फ़िल्मों की पटकथा सरीखा था, जहाँ माफ़िया सरगनाओं के इशारे पर चुनावों के नतीजे पहले से ही फ़िक्स होते है। लेकिन जो कभी काल्पनिक प्रतीत होता था, अब वह वास्तविकता में घटित हो रहा है।

इन दोनों सीटों पर जो घटित हुआ, उसे हमें पहले सिलसिलेवार तरीके से देखना चाहिए। पहला वाकया हुआ सूरत लोकसभा सीट पर जहाँ तीसरे चरण के तहत चुनाव होने थे। वहाँ भाजपा के प्रत्याशी मुकेश दलाल को छोड़कर अन्य सभी 8 प्रत्याशियों ने अपना नामांकन ही वापस ले लिया और कांग्रेस के प्रत्याशी का नामांकन जिला निर्वाचन अधिकारी द्वारा तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया गया! कांग्रेस ने सूरत लोकसभा सीट पर सुनील कुम्भानी को टिकट दिया था। नामांकन प्रक्रिया के ख़त्म होने के ऐन पहले प्रत्याशी के नामांकन प्रपत्र पर हस्ताक्षर करने वाले प्रस्तावकों ने यह कह दिया कि उन्होंने किसी भी तरह के नामांकन प्रपत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये है। इस तरह प्रस्तावकों के हस्ताक्षरों के फ़र्जी होने के आधार पर जिला निर्वाचन अधिकारी ने नामांकन रद्द कर दिया। इस प्रकरण के बाद से सुनील कुम्भानी लापता है। कांग्रेस के प्रत्याशी की तरफ़ से न तो कोई बयान जारी हुआ और न ही वह ख़ुद मीडिया के समक्ष आया। हाँ, कांग्रेस के स्थानीय नेताओं ने कुछ हो-हल्ला ज़रूर मचाया, केन्द्रीय चुनाव आयोग से इस मामले में हस्ताक्षेप की माँग की, पर इसका कोई असर नहीं हुआ। नतीजतन, बिना वोटिंग हुए भाजपा के प्रत्याशी को विजेता घोषित कर दिया गया। वैसे प्रथमदृष्टया यही लगता है कि कांग्रेस के प्रत्याशी की भाजपा से कोई डील ज़रूर हुई थी तथा नामांकन रद्द हो जाना नैसर्गिक लगे इसके लिए जानबूझकर फ़र्जी हस्ताक्षर वाला एंगल जोड़ा गया है।

यह बात भी थोड़ी अजीब है कि जिस सीट पर भाजपा पिछले तीन दशकों से अपराजेय रही है, वहाँ ऐसा क्या हुआ है कि भाजपा जीतने के लिए इतने तिकड़म लगा रही है? दरअसल पिछले एक दशक का समय सूरत के मँझोले और छोटे कपड़ा उत्पादकों एवं कपड़ा मज़दूरों के लिए मुश्किल भरा रहा है। जीएसटी के कारण इन कपड़ा उत्पादकों का मुनाफ़ा एक हद तक घटा है, वहीं कपड़ा उद्योग में लगे मज़दूरों के बीच भी बढ़ती महँगाई के कारण भाजपा के ख़िलाफ़ रोष व्याप्त है। कुल मिलाकर भाजपा का जनाधार सूरत में घटा है। अब यह असन्तोष भाजपा के ख़िलाफ़ वोटिंग में तब्दील भी हो सकता था, लेकिन अपनी षड्यन्त्रकारी राजनीति के ज़रिये भाजपा ने किसी तरह अपनी सीट बचा ली है।

वहीं इन्दौर में कांग्रेस के उम्मीदवार अक्षय कान्ति बाम ने वोटिंग के कुछ रोज़ पहले अपना नामांकन वापस ले लिया। बात यह भी सामने आ रही है कि अक्षय कान्ति बाम पर स्थानीय कोर्ट ने एक पुराने ज़मीन विवाद मामले में, हत्या के प्रयास की भी धारा जोड़ दी है। नामांकन वापस लेने के अगले दिन अक्षय कान्ति बाम भाजपा के बड़े नेता कैलाश विजयवर्गीय के साथ गले में भगवा पटका डाले हुए दिखे। तो क्या इसका यह मतलब है कि कोर्ट की कार्रवाई से बचने के लिए अक्षय कान्ति बाम ने भाजपा की शरण ली? तो क्या यहाँ भी मुक़ाबला पहले से फ़िक्स था? इसका जवाब आप सभी जानते हैं! वैसे अभी भी भाजपा के अलावा 12 प्रत्याशी वहाँ लोकसभा चुनाव में खड़े हैं। लेकिन कांग्रेस के चुनावी मैदान से बाहर हो जाने के बाद इन्दौर में भाजपा की जीत लगभग तय मानी जा रही है।

इन्दौर लोकसभा सीट पर पिछले चुनाव में भाजपा को 65 प्रतिशत के आसपास वोट मिले थे वहीं कांग्रेस को 31 फ़ीसदी वोट मिले थे। यह भी विदित रहे कि भाजपा यह सीट 1989 से लगातार जीत रही है। यानी कुल मिलाकर इन्दौर लोकसभा सीट भाजपा का गढ़ रही है। परन्तु, उसके बाद भी इस सीट पर भाजपा जीतने के लिए तमाम तरह के प्रपंच रच रही है। इन्दौर में दूसरे प्रत्याशियों ने भी भाजपा पर नामांकन वापस लेने के लिए डराने-धमकाने का आरोप लगाया है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भाजपा के ख़िलाफ़ देशभर में अलग-अलग अनुपात में ही सही पर एक भाजपा सरकार-विरोधी लहर है। जिसका भय अन्दर ही अन्दर भाजपा के शीर्ष नेतृत्व को भी है। रही सही कसर चुनावी रैलियों में भाजपा के नेताओं के अनर्गल बयानों और विशेषकर प्रधानमन्त्री मोदी द्वारा दिये गये बेतरतीब भाषणों ने भाजपा की लोकप्रियता को नुक़सान पहुँचाया है। 2014 और 2019 में जिस मोदी लहर की बात हो रही थी, वह इस बार मन्द पड़ चुकी है। चुनावों के पहले जो भाजपा अजेय दिखायी दे रही थी, चुनावी प्रक्रिया के मध्य आते आते कमजोर पड़ती दिख रही है। और यही कारण है कि भाजपा अपनी सीटे जीतने के लिए हर हथकण्डा अपना रही है।

वैसे यह षड्यन्त्र सिर्फ़ इन दो शहरों तक सीमित नहीं है। गान्धीनगर की सीट पर खड़े अन्य प्रत्याशियों को डराने-धमकाने की बात सामने आ रही है। इस सीट के एक प्रत्याशी ने वीडियो सन्देश के ज़रिये बताया कि उसे नाम वापस लेने के लिए धमकियाँ दी जा रही है। गान्धीनगर की सीट पर भाजपा के तथाकथित "चाणक्य" अमित शाह चुनाव लड़ रहे है।

खजुराहो में इण्डिया गठबन्धन की तरफ़ से खड़े हुए सपा के उम्मीदवार का पर्चा रद्द कर दिया गया है। पर्चा बेहद मामूली तकनीकी आधार पर रद्द किया गया है। इण्डिया गठबन्धन के खजुराहो सीट पर बाहर होने के बाद भाजपा के लिए अब वहाँ कोई चुनौती नहीं है।

सूरत लोकसभा सीट के मामले में तो केन्द्रीय चुनाव आयोग को तुरन्त संज्ञान देने के बावजूद वह चुप्पी साधे हुए बैठा है। सूरत और इन्दौर में जो भी घटित हुआ वह सीधे तौर पर जनता के चुनने और चुने जाने के जनवादी अधिकार पर हमला था। बुर्जुआ जनवाद के दायरे में भारत की जनता के पास जो भी सीमित अधिकार मिले हुए है, भाजपा और संघ उसे भी छीनने पर अमादा है।

वैसे भाजपा आज जो अलग-अलग लोकसभा सीटों पर षड्यन्त्रकारी तरीक़े से अपने विरोधियों को पछाड़ रही है, उसका ट्रेलर चण्डीगढ़ मेयर चुनाव में भी दिख चुका था। जब चुनाव अधिकारी वोटों के साथ छेडछाड़ करते हुए कैमरे पर पकड़े गये थे। उस वक़्त भारी विरोध के बावजूद केवल उक्त अधिकारी पर कार्रवाई की गयी, परन्तु इसकी पड़ताल नहीं की गयी कि आख़िर किसके कहने पर चुनावों में उक्त अधिकारी ने धाँधली की!

भाजपा चुनाव जीतने के लिए हर सम्भव हथकण्डा अपना रही है। इसके लिए वह ईडी- सीबीआई का इस्तेमाल करके वह पहले ही विपक्ष के नेताओं को डरा रही है, उन्हें जेल पहुँचा रही है। कई इलाक़ों में पुलिस फ़ासीवादी भाजपा की मदद कर रही है। इसका उदाहरण हमने आगरा में देखा है, जहाँ कई इलाक़ों में मुस्लिम मतदाताओं को वोट देने से रोका गया है। वहीं दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी अपने काडरों को भाजपा की जीत का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उतार दिया है। जगह-जगह से इनकी गुण्डागर्दी की ख़बरें भी आ रही है। अभी हाल ही में अमित शाह की रैली में भाड़े की भीड़ का सच उजागर करने वाले 'मोल्टिक्स' नाम के चैनल के पत्रकार की भाजपा के कार्यकर्ताओं ने लिंचिंग करने और उसका कैमरा तोड़ने की कोशिश की।

कुल मिलाकर भाजपा सत्ता में दोबारा आने के लिये न सिर्फ़ सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग करने पर आमादा है बल्कि तृणमूल स्तर पर इसने काडरों को भी उतार दिया है, जो अपनी गुण्डागर्दी से इस चुनाव को प्रभावित कर रहे हैं। यह सब पर्दे के पीछे से नहीं बल्कि खुल्लम खुल्ला हो रहा है। अगर यह कहा जाये कि फ़ासीवादी दौर में 18वीं लोकसभा के चुनाव ने एक हद तक भारतीय जनतन्त्र की सीमा उजागर कर दी है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

भाजपा की इन सब कारगुज़ारियों पर केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) धृतराष्ट्र बनकर चुप्पी साधे बैठा है। सूरत और इन्दौर मामले पर तो संज्ञान लेते हुए चुनाव आयोग को जाँच का आदेश देना चाहिए था। इस बात की जाँच होनी चाहिए थी कि क्या भाजपा के प्रत्याशियों ने दूसरे प्रत्याशियों पर दबाव डाला है? जाँच में दोषी पाये जाने पर उनका नामांकन ख़ारिज कर दिया जाता। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा! होने की कोई उम्मीद भी नहीं है। *जब सैंया भये कोतवाल, तो डर काहे का!*

और अन्त में.....

यह सर्वविदित है कि महज़ चुनाव में भाजपा की हार से फ़ासीवाद की पराजय नहीं होगी। सिर्फ़ मेहनतकश जनता के बदौलत खड़ी क्रान्तिकारी पार्टी के द्वारा खड़े व्यापक जुझारू जनआन्दोलनों के द्वारा ही फ़ासीवाद को फ़ैसलाकुन मात देने की शुरुआत जा सकती है। लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भाजपा के सत्ता में रहने से संघी फ़ासीवादियों को अपना एजेण्डा लागू करने की खुली छूट मिली रहती है, भाजपा के सत्ताच्युत होने के उपरान्त वह तुलनात्मक तौर पर कम ज़रूर होगी। हालाँकि यह भी सच है कि भारतीय पूँजीवादी राज्यसत्ता के सभी निकायों में, चाहे वह सेना हो, पुलिस हो, नौकरशाही हो, न्यायपालिका हो या अन्य संवैधानिक निकाय, संघ परिवार की घुसपैठ एक आन्तरिक कब्ज़े या टेकओवर की हद तक पहुँच चुकी है। इसलिए किसी और पूँजीवादी पार्टी की सरकार बनने पर भी वह फ़ासीवाद पर कोई लगाम कसेगी या कस पायेगी, इसकी सम्भावना कम है। वहीं देश का पूँजीपति वर्ग ही किसी अन्य पार्टी की सरकार को संघ परिवार और भाजपा के साम्प्रदायिक फ़ासीवाद पर निर्णायक रूप से लगाम कसने की इजाज़त नहीं देगा। लेकिन यह भी सच है कि चुनावों में हार से तात्कालिक अर्थों में राज्य मशीनरी को अपने फ़ासीवादी मंसूबों के लिए इस्तेमाल करने की संघ परिवार व भाजपा की क्षमता में परिमाणात्मक कमी अवश्य आयेगी और यह देश में जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को अपने आपको संगठित और एकजुट करने की एक मोहलत देगा। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि इस चुनाव में भाजपा को सत्ता से बाहर किया जाये। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि भारत की जनता के पास जो चुनने और चुने जाने का अधिकार है, उस पर हो रहे हमले के ख़िलाफ़ एकजुट हुआ जाये। ऐसे किसी भी घटना पर चुप्पी साध कर उसे नियति नहीं माना जाये बल्कि बार-बार उसे उठाया जाये, सत्ताधारियों और संवैधानिक संस्थाओं को बार-बार कठघरे में खड़ा किया जाये।

मई दिवस और मौजूदा दौर में मज़दूर वर्ग के समक्ष चुनौतियाँ

● सनी

स्तालिन ने मई दिवस को मज़दूर वर्ग का त्यौहार कहा था परन्तु आज मई दिवस देश के अधिकांश मज़दूरों के लिए महज़ एक रस्मअदायगी बनकर रह गया है। अधिकतम मज़दूरों को मई दिवस के महत्व के बारे में नहीं पता है और न ही उन्हें इसके गौरवशाली इतिहास के बारे में पता है। इसके कारण मज़दूर आन्दोलन के बिखराव में निहित हैं। हर साल सालाना आनुष्ठानिक कार्यक्रम करने वाली सीटू, एटक, एचएमएस सरीखी गद्दार यूनियनों ने इस साल भी मई दिवस पर केवल लड्डू बाँटे और अपने दफ़्तरों पर झण्डा फहरा दिया। देश में केवल कुछ जगह ही मई दिवस के राजनीतिक महत्व पर ज़ोर देते हुए विशेष कार्यक्रम लिए गए। यह त्रासद है कि आज मज़दूर शिकागो के नायकों की शहादत और 'काम के घण्टे आठ करो' नारे के इतिहास से परिचित नहीं हैं। यह त्रासदी और भी दुखद इसलिए है कि शासक वर्ग ने अपने प्रचार तन्त्र के ज़रिये मज़दूरों के बीच गाँधी, अम्बेडकर, पटेल तथा बुर्जुआ वर्ग के अन्य नेताओं/नायकों को स्थापित किया है। यह सहज ही समझा जा सकता है कि यह मज़दूर आन्दोलन के ठहराव का ही नतीजा है। आज मज़दूर आन्दोलन संगठित नहीं है, पूँजी की शक्तियाँ अभूतपूर्व रूप से हावी हैं। यह विपर्यय का दौर है।

ऐसे वक़्त में मज़दूर दिवस पर शिकागो के शहीदों को याद करते हुए 'मज़दूर वर्ग के राजनीतिक चेतना में प्रवेश' करने के इस दिन को याद करना बेहद ज़रूरी बन जाता है। एक बार फिर अनौपचारिकीकरण, भयावह कार्यस्थिति, बेहिसाब काम के घण्टे और मज़दूर-विरोधी सरकारों जैसी चुनौतियाँ दुनिया के मज़दूरों के सामने एक सीमित मायने में और एक नये स्तर पर वैसी ही हैं जैसी कि 19वीं सदी के अन्त में दुनिया के मज़दूर वर्ग के सामने थीं। हालाँकि मई दिवस के शहीदों के संघर्ष का काल साम्राज्यवाद के उद्भव का काल था और इस दौर में ही सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के महासमर के पहले चक्र का आगाज़ हो चुका था। आज हम साम्राज्यवाद के अन्तिम चरण भूमण्डलीकरण के दौर में हैं। यह विपर्यय तथा पराजय का दौर है जब सर्वहारा क्रान्तियों का अगला चक्र प्रतीक्षारत है।

एक ऐसे वक़्त में हम मई दिवस मना रहे हैं जब मज़दूरों से उन अधिकारों को ही छिना जा रहा है जिन्हें मई दिवस के शहीदों की शहादत और मजदूर वर्ग के बेमिसाल संघर्षों के बाद हासिल किया गया था। दुनिया भर में फ़ासीवादी और धुर-दक्षिणपंथी सरकारें सत्ता में पहुँच रही हैं जो मज़दूर अधिकारों पर पाटा चला रही हैं। यह दौर नवउदारवादी हमले का दौर है। ठेकाकरण, अनौपचारिकीकरण, यूनियनों को ख़त्म किया जाना और श्रम क़ानूनों को ख़त्म किया जाना मज़दूर वर्ग के समक्ष चुनौती है। तुर्की के मज़दूर वर्ग के कवि नाज़िम हिकमत ने एक कविता में कहा था कि यह जानने के लिए कि हमें कहाँ जाना है यह जानना ज़रूरी होता है कि हम कहाँ से आये हैं। मई दिवस के आज के दौर की चुनौतियों की थाह लेने से पहले हम एक बार अपने अतीत पर निगाह डालें तो इस चुनौती का सामना करने का रास्ता भी मिल जायेगा।

19वीं सदी में मज़दूर वर्ग और मई दिवस

19 वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप, अमेरीका, ऑस्ट्रेलिया से लेकर दुनिया के लगभग हर उन्नत देश में आधुनिक सर्वहारा वर्ग अस्तित्व में आ चुका था। साथ ही, कई उपनिवेशों और अर्द्धउपनिवेशों में भी एक, छोटा-सा सही, सर्वहारा वर्ग अस्तित्व में आने लगा था। लियॉन, सिलेसिया, लंदन, मैंचेस्टर से लेकर पेरिस, शिकागो से लेकर न्यूयॉर्क और सिडनी के मज़दूरों का जीवन त्रासद था। कारख़ानों में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक काम कराया जाता था। अलेक्ज़ैण्डर ट्रेक्टेनबर्ग 'मई दिवस का इतिहास' पुस्तिका में बताते हैं:

"उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ही अमेरिका में मज़दूरों ने "सूर्योदय से सूर्यास्त" तक के काम के समय के विरोध में अपनी शिकायतें जता दी थीं। "सूर्योदय से सूर्यास्त" तक – यही उस समय के काम के घण्टे थे। चौदह, सोलह और यहाँ तक कि अट्ठारह घण्टे का कार्यकाल भी वहाँ आम बात थी। 1806 में अमेरिका की सरकार ने फ़िलाडेल्फ़िया के हड़ताली मोचियों के नेताओं पर साज़िश के मुक़दमे चलाये। इन मुक़दमों में यह बात सामने आयी कि मज़दूरों से उन्नीस या बीस घण्टों तक काम कराया जा रहा था।

...

"1834 में न्यूयॉर्क में नानबाइयों की हड़ताल के दौरान 'वर्किंग मेन्स एडवोकेट' नामक अख़बार ने छापा था – 'पावरोटी उद्योग में लगे कारीगर सालों से मिस्र के ग़ुलामों से भी ज़्यादा यातनाएँ झेल रहे हैं। उन्हें हर चौबीस में से औसतन अट्ठारह से बीस घण्टों तक काम करना होता है।'"

इस दौर में पश्चिमी देशों के मज़दूरों ने काम के घण्टे कम करने की माँग मालिक वर्ग के समक्ष रखी। मज़दूर वर्ग पहले अपने कारख़ाने में, फिर अपने इलाक़े में और अन्ततः देश में राजनीतिक रूप से संगठित हुआ। उसकी लड़ाई क़दम-ब-क़दम बढ़ते हुए कारख़ानों में मशीन तोड़ने से आगे बढ़कर पहले वेतन-भत्ते की लड़ाई तक गयी और फिर इससे आगे बढ़कर देश स्तर पर अपने राजनीतिक अधिकारों की माँग रखने और राजनीतिक सत्ता की लड़ाई में तब्दील हो गयी। 1848 से पहले लियॉन शहर में औद्योगिक दंगे, सिलेसियाई बुनकरों का विद्रोह और इंग्लैण्ड के मज़दूरों का माँगपत्रक आन्दोलन वे प्रातिनिधिक आन्दोलन थे जिनके ज़रिये मज़दूर आन्दोलन ने इतिहास के रंगमंच पर धमाकेदार प्रवेश किया और 1848 तक आते-आते राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष भी शुरू कर दिया। 1871 में पेरिस कम्यून की स्थापना के ज़रिये मज़दूर 'स्वर्ग पर धावा बोल चुका था' और पेरिस कम्यून के अल्पजीवी प्रयोग में समाजवादी व्यवस्था के भविष्य के प्रयोगों की ज़मीन तैयार कर चुका था।

इस समय ही अमेरिका के मज़दूर भी तेज़ी से संगठित हो रहे थे। कार्यस्थिति बेहतर करने का आन्दोलन तेज़ी से फैल रहा था। मार्क्स कहते हैं कि **'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन – एक ऐसा आन्दोलन था जो तेज़ी के साथ अटलाण्टिक से हिन्द तक, न्यू इंग्लैण्ड से कैलिफ़ोर्निया तक फैल गया। अमेरीका के शिकागो शहर में इस आन्दोलन ने जो रूप लिया वह इतिहास में दर्ज हो गया। 'आठ घण्टे काम की समितियों' के नेतृत्व में "आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम" के नारे के इर्द-गिर्द शिकागो का मज़दूर एकजुट हो गया। 1 मई 1886 के दिन को आम हड़ताल का दिन तय किया गया। इस दिवस के तीन दिनों बाद ही 4 मई को हे मार्केट चौक पर मज़दूरों ने इस माँग को लेकर एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन किया, जहाँ साज़िशाना तरीक़े से पुलिस और मालिकों ने मिलकर बम फेंक दिया। इस सभा में बम के धमाके की अफरातफ़री में पुलिस ने मज़दूरों की सभा पर गोली चला दी, जिसमें चार लोगों की मौत हो गयी। इस घटनाक्रम में सात पुलिसकर्मी भी मारे गये। पुलिस ने मज़दूर नेताओं को जेल में ठूंस दिया जिनमें से चार नेतृत्वकारी मज़दूरों को बाद में एक नक़ली मुक़दमे में बिना किसी सुबूत के फाँसी दे दी गयी। यह मुक़दमा एक नाटक था, जिसमें मज़दूरों को आवाज़ उठाने के लिए सज़ा देने का निर्णय पहले ही किया जा चुका था।** लेकिन शिकागो के शहीदों की क़ुर्बानी से दुनिया भर का मज़दूर जाग उठा।

1889 में द्वितीय इण्टरनेशनल ने, जो कि दुनियाभर की कम्युनिस्ट व मज़दूर पार्टियों का अन्तरराष्ट्रीय मंच था, पूरी दुनिया में 1 मई को मई दिवस मनाने का फ़ैसला किया क्योंकि यह मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का एक प्रतीक बन चुका था। इसके साथ पूरी दुनिया में ही आठ घण्टे के कार्यदिवस का संघर्ष और आगे बढ़ा। यह मार्क्स के नारे 'दुनिया के मज़दूरों एक हो' का ही कार्यान्वयन था जहाँ रंग, नस्ल, भाषा, राष्ट्र के अन्तर के बावजूद अपनी अन्तर्राष्ट्रीय एकता दिखाते हुए मज़दूर एक ही माँग के बैनर तले सड़कों पर उतरे। एंगेल्स 1890 में लिखते हैं:

"जब मैं ये पक्तियाँ लिख रहा हूँ, यूरोप और अमेरिका का सर्वहारा अपनी शक्तियों की समीक्षा कर रहा है, यह पहला मौक़ा है, जब सर्वहारा वर्ग एक झण्डे तले, एक तात्कालिक लक्ष्य के वास्ते, एक सेना के रूप में, गोलबन्द हुआ है : आठ घण्टे के कार्य-दिवस को क़ानून द्वारा स्थापित कराने के लिए...। यह शानदार दृश्य जो हम देख रहे हैं, वह पूरी दुनिया के पूँजीपतियों, भूस्वामियों को यह बात अच्छी तरह समझा देगा कि पूरी दुनिया के सर्वहारा वास्तव में एक हैं। काश! आज मार्क्स भी इस शानदार दृश्य को अपनी आँखों से देखने के लिए मेरे साथ होते।"

मज़दूर वर्ग ने 20वीं शताब्दी में मई दिवस के अवसर का बख़ूबी इस्तेमाल किया। बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में रूस के मज़दूर वर्ग ने ज़ारशाही के निरंकुश शासन में 'मई दिवस' के उपलक्ष्य को अपनी शक्तियों को विस्तार देने और समाजवादी क्रान्ति का प्रचार करने का दिवस बना दिया। 20वीं शताब्दी में मजदूर आन्दोलनों के दबाव में दुनिया के अधिकांश देशों ने 'काम के घण्टे 8' को क़ानूनी तौर पर मान्यता दी। भारत सरकार ने भी कागज़ी तौर पर इस कानून को मान्यता दी। लेकिन आज जब हम मौजूदा दौर को देखते हैं तो पाते हैं कि मज़दूरों को मिले ये क़ानूनी हक़-अधिकार भी सरकारें छीन रही हैं।

आज का मज़दूर वर्ग और ऐतिहासिक चुनौतियाँ

आज हम साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के समय में जी रहे हैं जो साम्राज्यवादी युग का आख़िरी दौर है। 1970 के दशक से दीर्घकालिक मन्दी में डूबी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था 2007-08 के बाद से दीर्घकालिक महामन्दी/संकट में डूबी है। आर्थिक संकट के चलते दुनिया भर में धुर दक्षिणपंथी और फ़ासीवादी सरकारें सत्तासीन हो रही हैं। इसका प्रभाव मज़दूरों के हक़-अधिकारों पर पड़ा है। 1980 के दशक से भारत में भी अनौपचारिकीकरण की प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ी है। आज़ाद हिन्दुस्तान में पहले से ही विशाल अनौपचारिक क्षेत्र मौजूद था जो नवउदारवाद के दौर में और तेज़ी से फैला है। ठेका प्रथा, कैज़ुअलाइज़ेशन व दिहाड़ीकरण के ज़रिये मज़दूरों का शोषण भीषण से भीषणतम हो रहा है। आज भारत के 93 से 94 प्रतिशत मज़दूर अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्रों के कारख़ानों, वर्कशॉपों, दुकानों, खेतों व अन्य कार्यस्थलों पर काम करते हैं। हालत यह है कि भारत के कुल मज़दूरों के 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्से को आठ घण्टे का कार्यदिवस हासिल नहीं है। न ही इन मज़दूरों को पीएफ़, ईएसआई, पेंशन, बोनस, स्वैच्छिक ओवरटाइम व ओवरटाइम के डबल रेट से भुगतान आदि जैसे श्रम अधिकार प्राप्त हैं। दशकों पहले संघर्षों के दम पर हासिल किये गये इन तमाम अधिकारों को आज पहले से भी बड़े पैमाने पर छीना जा रहा है और संगठित क्षेत्र के मज़दूर भी अब इसके निशाने पर आ रहे हैं। मोदी सरकार 8 घण्टे काम के क़ानून को कागज़ों से भी अपने नये लेबर कोड के साथ ग़ायब करने की तैयारी में है। दिल्ली, चेन्नई, गुडगाँव, नोएडा, पुणे, कोलकता से लेकर भारत के हर कोने में मज़दूरों की कार्यस्थिति और जीवनस्थिति दुरूह होती जा रही है।

दीर्घकालिक महामन्दी के दौर में पूँजीपति वर्ग अपना विकल्प चुन रहा है। आज हमारे देश में जो फ़ासीवादी मोदी सरकार मौजूदा चुनाव में विपरीत लहर के बावजूद भी पूँजीपति वर्ग के भारी धनबल, ईवीएम, चुनाव आयोग और केन्द्रीय एजेंसियों के इस्तेमाल के ज़रिये 2024 लोकसभा चुनाव में जीतकर सत्ता में पहुँचने का ख़्वाब देख रही है, वही वह प्रतिक्रियावादी विकल्प है जिसे देश के विशेष तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग ने चुना है। मोदी सरकार ने पिछले दस सालों में देश भर में मज़दूरों की लूट और शोषण को सुगम बनाने के लिए श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ा दी हैं, अप्रत्यक्ष टैक्सों के ज़रिये महँगाई बेतहाशा बढ़ायी है, पुलिस प्रशासन और मालिकों को मज़दूर आन्दोलन का दमन करने के लिए खुला हाथ दिया है और पब्लिक सेक्टर कम्पनियों को पूँजीपतियों को औने-पौने दाम में बेचा है। इन सब नीतियों की ओर हमारी नज़र और हमारा ध्यान न जाये इसलिए हमें हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्जिद और 'पाकिस्तान का ख़तरा' जैसे झूठे मसलों में उलझाया जाता है और आपस में लड़ाकर असली मुद्दों पर एकजुट होकर लड़ने से रोका जाता है। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद का काला नाग मज़दूर आन्दोलन को कुचल देने पर आमादा है। यह पैदा ही इसलिए होता है क्योंकि आर्थिक संकट में घिरे पूँजीपति वर्ग को मज़दूरों को निचोड़ने के लिए फ़ासीवादियों की ज़रूरत होती है। इस ज़हरीले नाग को कुचलने और अपने हक़-अधिकारों को प्राप्त करने के लिए हम मज़दूरों को ख़ुद को संगठित और गोलबन्द करने की तरफ़ आगे

(पेज 6 पर जारी)

सामाजिक-आर्थिक विषमता दूर करने के कांग्रेस के ढपोरशंखी वायदे और मोदी की बौखलाहट

● विवेक

जनता से किये गये बड़े-बड़े ढपोरशंखी वायदे भारतीय बुर्जुआ चुनावी राजनीति और सम्भवत: किसी हद तक हर देश में पूँजीवादी राजनीति की चारित्रिक विशेषता है। लेकिन भारत में तो यह ग़ज़ब तरीके से होता है। पंचायत चुनाव से लेकर लोकसभा चुनाव तक में हर प्रत्याशी अपने प्रतिद्वन्दी से बढ़कर ही वायदे करता है, चाहे उसका सत्य से कोई लेना-देना हो या न हो। 18वीं लोकसभा के चुनाव में भी इसी परिपाटी का पालन हो रहा है। मज़ेदार बात है कि ऐसे वायदे सत्तासीन पार्टी की तरफ़ से नहीं बल्कि विपक्ष की तरफ़ से ज़्यादा हो रहे हैं। सत्तासीन पार्टी के पास तो 10 साल के कुशासन के बाद किसी ठोस मुद्दे पर कोई ठोस वायदा करने की स्थिति ही नहीं बची है, तो मोदी सरकार बस साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने वाले झूठ और ग़लतबयानियों का सहारा ले रही है। लेकिन 'इण्डिया' गठबन्धन ठोस मुद्दों पर बात अवश्य कर रहा है। लेकिन वायदे ऐसे कर रहा है, जो भारतीय पूँजीवाद की आर्थिक सेहत को देखते हुए व्यावहारिक नहीं लगते।

अप्रैल में एक चुनावी सभा में राहुल गाँधी ने बयान दिया था कि देश में आर्थिक असमानता है। वह देश में जातिगत जनगणना के साथ व्यापक आर्थिक सर्वे करवाना चाहते हैं, ताकि यह पता चले कि देश में अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति कैसी है! इसी जानकारी के आधार पर कांग्रेस सरकार (अगर वह सत्ता में आ जाये तो!) "अफ़रमेटिव एक्शन" की रूपरेखा तैयार करेगी, यानी मोटे अर्थों में "उनके हित में क़दम उठायेगी"। वैसे कांग्रेस सत्ता में आकर यह करेगी या नहीं, यह बिल्कुल ही दूसरी बात है। इसका रिश्ता एक व्यक्ति के तौर पर राहुल गाँधी की ईमानदारी या बेईमानी से भी नहीं है। सवाल है कांग्रेस पार्टी व इण्डिया गठबन्धन के दलों और उनकी राजनीति के वर्ग चरित्र का!

अब राहुल गाँधी के इसी बयान को मोदी ने राजस्थान की रैली में यह कहकर पेश किया कि कांग्रेस उनकी सम्पत्ति छीन कर मुसलमानों को दे देगी! इसी भाषण में मोदी ने मुस्लिमों को "घुसपैठिया" और "ज़्यादा बच्चा पैदा करने वाला" भी कहा। अपने झूठे दावों को सही ठहराने के लिए मोदी ने पूर्व प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह के वर्ष 2006 के एक बयान को तोड़ मरोड़कर पेश किया, जिसमें तत्कालीन प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि देश की सम्पदा पर यहाँ की दमित आबादी जिसमें मुस्लिम आबादी का एक हिस्सा भी शामिल है, उनका भी हक़ है। इसी भाषण में मोदी ने आगे यह भी जोड़ दिया कि कांग्रेस हिन्दू औरतों के ज़ेवर और मंगलसूत्र छीन कर दूसरों को दे देगी! अपनी चुनावी सभाओं में वे यह भी कहते हुए पाये गये कि कांग्रेस आपकी भैंस छीन कर मुसलमानों को बाँट देगी! वैसे मोदी की ऐसी पैंतरेबाज़ी बताती है कि दस वर्ष के शासन काल में भाजपा सरकार हरेक मसले पर इस कदर विफल है कि वह जनता से अपने कामों के आधार पर वोट तक नहीं माँग नहीं सकती है। इसलिए उसे जनता को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने के लिए ऐसे अनर्गल बयानों का सहारा लेना पड़ रहा है, ताकि चुनाव में वह वोटों की फ़सल काट सके।

वैसे हमें यह भी समझना होगा कि कांग्रेस ऐसे वायदों को अपने घोषणापत्र में क्यों शामिल कर रही है? आज देश में ग़ैर-बराबरी आज़ादी के बाद अपने सबसे उच्चतम स्तर पर है। इसे आँकड़ों से भी देखा जा सकता है। वर्ल्ड इनइक़्वालिटी लैब द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार भारत में ग़ैर-बराबरी आज़ादी के बाद अपने सबसे भयंकर रूप में है। वर्ल्ड इनइक्वालिटी लैब के रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2022-2023 के दौरान भारत की ऊपर की 1 प्रतिशत आबादी राष्ट्रीय आय के 22.6 प्रतिशत पर नियन्त्रण रखती है। इसके साथ ही अतिधनाढ्य परजीवियों की यह आबादी कुल सम्पत्ति के 40 प्रतिशत पर नियन्त्रण रखती है। एक और दूसरी

रिपोर्ट जो ऑक्सफेम ने प्रकाशित की है उसके अनुसार पिछले एक दशक में भारत में अरबपतियों की संख्या 271 तक जा पहुँची है। वहीं भारत में ग़रीबी रेखा के नीचे की आबादी 22.8 करोड़ है। एक बात और ग़ौर करने लायक़ है कि कांग्रेस बार-बार जातिगत जनगणना के साथ आर्थिक सर्वे की बात कह रही है। दरअसल यह चुनावी वायदा इसलिए भी किया गया कि आज देश में पिछड़ी, दलित व अनुसूचित जनजातियों को रिझाया जा सके। पिछड़ी, दलित व अनुसूचित जनजातियों की बड़ी आबादी भयंकर ग़रीबी में रहने के लिए अभिशप्त है। वर्ष 2021 में प्रकाशित यूनाइटेड नेशन की एक रिपोर्ट के अनुसार आज मल्टी डाइमेंशनल पॉवर्टी इण्डेक्स के मुताबिक़ भारत में ग़रीबी रेखा के नीचे आने वाला हर 6 में से 5 व्यक्ति पिछड़ी, दलित या अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्ध रखता है।

अव्वल बात तो यह है कि जिसे सम्पत्ति के पुनर्वितरण से जोड़ा जा रहा है, वैसा वायदा कांग्रेस द्वारा अपने मैनीफ़ेस्टो में किया नहीं गया है। कांग्रेस ने अपने मैनीफ़ेस्टो में भारत में व्याप्त ग़ैर-बराबरी को दूर करने के प्रयास का भरोसा दिलाया है। आज जिस ग़ैर-बराबरी की बात कांग्रेस कर रही है, उसे इस स्तर तक पहुँचाने में कांग्रेस की पिछली सरकारों का भी योगदान है। सच्चाई यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत देश में व्याप्त आर्थिक विषमता को दूर कर पाना सम्भव ही नहीं है। पूँजीवाद की नैसर्गिक गतिकी ही ऐसी होती है कि वह आर्थिक विषमता को बढ़ाये। एक वृहत आबादी विपन्नता और बेरोज़गारी से त्रस्त हो ताकि बेरोज़गारों की एक रिज़र्व फ़ौज कम से कम उजरत पर मालिकों के मुनाफ़े के लिए खटने के लिए तैयार हो, यह स्थिति पूँजीवादी व्यवस्था की आन्तरिक आर्थिक गति से ही पैदा होती है। इसलिए पूँजीवादी दायरे में ऐसी खोखली सुधारवादी कल्याणकारी नीतियों की पैबन्दसाजी करके इस समस्या को दूर नहीं किया जा सकता है। फ़ासीवादी सरकार ने पूँजीवादी व्यवस्था के इन सड़े हुए नतीजों को अभूतपूर्व तरीके से बढ़ाने का काम किया है क्योंकि फ़ासीवादी सत्ता पैदाइश ही पूँजीवादी मन्दी की होती है। फ़ासीवादियों को अपने धनबल से सत्ता में पूँजीपति वर्ग पहुँचाता ही इसीलिए है कि वह पूँजीवादी क़ानूनों व जनवादी व संवैधानिक अधिकारों को भी कचरापेटी के हवाले कर मेहनतकश आबादी की नंगी और बर्बर लूट की खुली आज़ादी धन्नासेठों को मुहैया कराये। मोदी सरकार ने पिछले 10 सालों में यही तो किया है! इस मामले में भाजपा देश की अन्य सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियों से भिन्न है, यह सच है। लेकिन कोई अन्य पूँजीवादी दल या दलों का गठबन्धन भी आज कल्याणकारी वायदों को वाकई पूरा कर पाये, इसकी गुंजाइश बेहद कम है। पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी व्यवस्था की सेहत ही ऐसी नहीं है कि कोई पूँजीवादी सरकार यह कर सके।

फ़ासीवादी भाजपा की नव उदारवादी नीतियों का ही यह परिणाम रहा है कि आज भारत दुनिया के आर्थिक रूप से सबसे विषम देशों की फ़ेहरिस्त में शीर्ष स्थानों पर है। भाजपा इसलिए भी कांग्रेस के इस वायदे से असहज महसूस कर रही है कि जिन पिछड़ी, दलित और अनुसूचित जनजातियों से आने वाली आबादी को वह अपने हिन्दुत्व की व्यापक पहचान से जोड़कर अपने लिए पक्का वोटबैंक बनाने का ख़्वाब संजोती है, इण्डिया गठबन्धन के ऐसे वायदों से उसके सपने के बिखर जाने का ख़तरा भी उसे सताता है। दूसरी चीज़ यह कि फ़ासीवादी भाजपा नवउदारवादी नीतियाँ लागू करते हुए उस छोड़ पर जा पहुँची है, जहाँ वह ऐसे खोखले सुधारवादी कल्याणकारी वायदे भी नहीं कर सकती है। अत: बौखलाहट में प्रधानमन्त्री मोदी और उनके अन्य सिपहसालार ऐसी हास्यास्पद आलोचनाएँ रख रहे हैं।

आज हमें यह समझना होगा कि आर्थिक और सामाजिक ग़ैर-बराबरी को बुर्जुआ जनवाद के दायरे में सुधारवादी नीतियाँ लागू करके दूर नहीं किया जा सकता है। इस समस्या का समाधान केवल समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है। इसलिए इन झूठे चुनावी वायदे के पाश में फँसने के बजाय इन बुर्जुआ दलों की असलियत को समझें! इण्डिया गठबन्धन की सरकार बनने से ज़्यादा से ज़्यादा यह होगा कि नवउदारवादी नीतियों को लागू करने की रफ़्तार, दर और तानाशाहाना तौर-तरीकों में कुछ मात्रात्मक कमी आ सकती है। राजनीतिक तौर पर, देश की क्रान्तिकारी शक्तियों को अपने आपको गोलबन्द और संगठित करने की एक सीमित व तात्कालिक मोहलत मिल सकती है। इससे ज़्यादा उम्मीद लगाकर कोई बैठा है, तो वह पस्तहिम्मती और उदारतापन्थी वायरस का शिकार है।

मई दिवस और मौजूदा दौर में मज़दूर वर्ग के समक्ष चुनौतियाँ

(पेज 5 से आगे)

बढ़ना होगा और साथ ही शोषण और दमन के विरुद्ध जनता के विभिन्न हिस्सों के आन्दोलनों को भी समर्थन और नेतृत्व देना होगा। इसके लिए हमें धर्म और जाति की राजनीति का पूर्ण बहिष्कार करना होगा और धर्म को पूरी तरह से नागरिकों के व्यक्तिगत मसले में तब्दील करने की लड़ाई भी लड़नी होगी।

आज का मज़दूर वहाँ नहीं खड़ा है जहाँ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिकागो, पेरिस या लन्दन का मज़दूर खड़ा था। हमारे समक्ष चुनौतियाँ नये स्तर पर हैं और हमारी संख्यात्मक शक्ति पहले के मुकाबले कई गुना बढ़ चुकी है हालाँकि आज हम बिखरे हुए हैं। भारत में 50 करोड़ से ज़्यादा मज़दूर हैं। मज़दूर वर्ग आज इस देश का सबसे बड़ा वर्ग है। शासक वर्ग ने हमारी ताक़त को बिखरने के लिए उत्पादन की प्रणाली को बिखरा दिया गया है जिस वजह से एक फैक्ट्री की छत में मज़दूरों का संगठित होना मुश्किल हो गया है। आज का कार्यभार है कि विभिन्न सेक्टरों के सभी मज़दूरों की एकजुट सेक्टरगत–पेशागत यूनियनें बनायी जायें और इलाकाई यूनियन भी खड़ी की जायें। दूसरी तरफ़ मालिक ठेका मज़दूरों और परमानेण्ट मज़दूरों के बीच भी दीवार खड़ी कर मज़दूर एकता को तोड़ते हैं। इसलिए एक ज़रूरी कार्यभार मुख्यत: ठेका मज़दूरों को आधार बनाने वाली यूनियनों को खड़ा करना है क्योंकि केवल ऐसी यूनियनों को खड़ा कर ही हम परमानेण्ट मज़दूरों के हक़-अधिकारों के लिए भी लड़ सकते हैं। दुनिया भर में मज़दूर आन्दोलन के बिखरने का एक कारण संशोधनवादी पार्टियों की घुसपैठ भी रही है जो मज़दूर आन्दोलन को केवल आर्थिक संघर्षों तक सीमित रखकर मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना को कुन्द करते हैं। हालाँकि इनकी पहुँच मुख्यतः औपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों के बीच ही है लेकिन यह अपने कुकर्मों से समूचे मज़दूर आन्दोलन को प्रभावित करते हैं। हमें अपने बीच से इन भितरघातियों को खदेड़ देना होगा।

हम इस मायने में आज 19वीं सदी के मज़दूरों से भी बेहतर ज़मीन पर खड़े हैं क्योंकि हमारे पास पेरिस कम्यून, शिकागो के आन्दोलन, अक्टूबर क्रान्ति और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की गौरवशाली परम्परा खड़ी है। हमें आज नये सिरे से क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन को संगठित करना होगा। इस आन्दोलन का मक़सद केवल अपने आर्थिक संघर्षों तक सीमित नहीं होगा बल्कि मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन यानी समाजवाद के लिए संघर्ष करने का होगा। यही मई दिवस के योद्धाओं को सच्ची आदरांजलि होगी।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा पाँच लोकसभा सीटों पर की जा रही रणकौशलात्मक भागीदारी की विस्तृत रिपोर्ट

● बिगुल संवाददाता

2024 का आम चुनाव जारी है। यह आम चुनाव बीते आम चुनावों की तुलना में अलग है। इस बार का चुनाव महज़ शासक वर्ग की मैनेजिंग कमेटी के बतौर इस या उस पार्टी का चुनाव तो है ही, लेकिन साथ ही यह सत्तासीन फ़ासीवादी शक्ति द्वारा तमाम जनवादी अधिकारों का छिन्न-भिन्न कराने का उपक्रम भी है। बीते 10 सालों में फ़ासीवादी भारतीय जनता पार्टी ने सिलसिलेवार तरीक़े से पूँजीवादी लोकतन्त्र की संस्थाओं, प्रक्रियाओं आदि को ध्वस्त किया है। सत्तासीन दल ने राज्यसत्ता के अन्य निकायों के अन्दर अपनी घुसपैठ की है और उनके तथाकथित "स्वतन्त्र" चरित्र कोस्खलित कर उसे अपने अनुरूप ढाला है। कहने का अर्थ है कि ये निकाय हमेशा ही पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करते थे, लेकिन कम-से-कम निष्पक्षता का खोल ओढ़कर रखते थे। मोदी-शाह की फ़ासीवादी सरकार ने इस दिखावे को भी समाप्त कर दिया है। सारे नियम-क़ायदों को ताक पर रखकर अपनी पसन्द के चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति, ईवीएम के ज़रिये चुनावों पर उठ रहे जायज़ सवालों का गला घोंटे जाने, ऐन चुनाव के समय विपक्षी नेताओं को जेल भेजे जाने, उनके अकाउण्ट सीज़ किये जाने, बड़ी मात्रा में तमाम स्वतन्त्र, निर्दलीय उम्मीदवारों का नामांकन रद्द किये जाने से लेकर सूरत, इन्दौर, पुरी, वाराणसी तक इसके उदाहरण सबके सामने हैं।

व्यापक विरोध के बावजूद ईवीएम द्वारा कराया जा रहा यह चुनाव चुनावी पारदर्शिता को ही कठघरे में खड़ा करता है। सत्तासीन भारतीय जनता पार्टी को छोड़कर चुनाव में भागीदारी कर रहे तमाम दलों, तमाम जानकारों, बुद्धिजीवियों, जनपक्षधर पत्रकारों और आम मेहनतकश जनता का बड़ा हिस्सा, यानी चुनाव प्रक्रिया में भागीदारी करने वालों का बड़ा हिस्सा, ईवीएम पर विश्वास नहीं करता है। पूँजीवादी मानकों से भी चलें तो जनवादी उसूलों का तकाज़ा यही है कि चुनाव प्रक्रिया व्यापक आबादी के भरोसे को सुनिश्चित करे। दुनिया के विभिन्न देशों में ईवीएम पर उठ रहे सवालों के बाद, वहाँ ईवीएम प्रणाली को वापस ले लिया गया। लेकिन हमारे यहाँ सम्बन्धित संस्थाओं के समक्ष इस बाबत लगातार उठाये गये प्रश्नों के बावजूद उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगी।

ग़ौरतलब है कि इस चुनाव से ठीक पहले भाजपा ने चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति सम्बन्धी अधिनियम में परिवर्तन किया है, और उसके तहत नये चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति की। नये अधिनियम के मुताबिक़ अब मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य चुनाव आयुक्तों का चयन तीन सदस्यीय चयन समिति द्वारा किया जायेगा, जिसमें प्रधानमन्त्री, केन्द्रीय गृह मन्त्री तथा लोकसभा में सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता शामिल होंगे। अब यह बात किसी को समझाने की ज़रूरत नहीं कि इस "वैधानिक प्रक्रिया" के तहत कैसी नियुक्ति हो सकती है! यह अनायास नहीं है कि इलेक्टोरल बॉण्ड महाघोटाले से लेकर मोदी, योगी, हेमन्त बिसवा से लेकर भाजपा के छुटभैयों के घनघोर साम्प्रदायिक बयानों के बावजूद केचुआ (केन्द्रीय चुनाव आयोग) कान में तेल डालकर बैठा हुआ है।

यह सच है कि पूँजीवादी जनवाद के तहत होने वाले चुनाव आम जनता के लिए छद्म विकल्पों का ही चुनाव होता है। इसके ज़रिये जनता एक न्यायपूर्ण व समानतामूलक व्यवस्था की स्थापना का सपना नहीं देख सकती है। बहुदलीय पूँजीवादी लोकतन्त्र जनता को बेहद सीमित जनवादी अधिकार देता है। इसके बावजूद इन जनवादी अधिकारों का जनता के लिए महत्व है और इनकी धज्जियाँ उड़ाये जाने के विरुद्ध जनता को अनिवार्यत: संघर्ष करना चाहिए। आज तो चुनावों में मालिकों, ठेकेदारों, दलालों, व्यापारियों की सेवा करने वाली अन्य पूँजीवादी पार्टियों का 'विकल्प' भी भाजपा द्वारा केवल औपचारिक बनाया जा रहा है। यानी, तमाम पूँजीवादी चुनावी पार्टियों के चुनावी विकल्प भी अब व्यावहारिक तौर पर समाप्त करने की कोशिशें भाजपा व संघ परिवार द्वारा की जा रही हैं।

पूँजीवाद में तमाम जनवादी अधिकार, आबादी के बहुलांश यानी मज़दूर वर्ग, अर्द्ध-मज़दूर आबादी, ग़रीब व निम्न-मँझोले किसानों, निम्न मध्यवर्ग, मध्यवर्ग तक पहुँचते-पहुँचते दम तोड़ देते हैं। यहाँ जनवाद मूलत: और मुख्यत: सबसे अमीर वर्गों यानी पूँजीपतियों, धनी ठेकेदारों, धनी व्यापारियों, कुलकों व पूँजीवादी किसानों, उच्च मध्य वर्ग के लोगों तक ही सीमित होता है। ऐसे में चुनाव में आम मेहनतकश जनता शासक वर्ग के किसी भी धड़े का राजनीतिक प्रतिनिधित्व कर रही पार्टियों का पिछलग्गू बनकर अपने स्वतन्त्र वर्ग हितों के लिए संघर्ष नहीं कर सकती है। अगर जनता कांग्रेस, सपा, बसपा, आप, द्रमुक, अन्नाद्रमुक, जद (यू), जद (सेकू), तृणमूल कांग्रेस, राजद, शिवसेना, राकांपा, भाकपा, माकपा, भाकपा (माले) लिबरेशन आदि को भी चुनती है, तो ये पार्टियाँ भी जनता की सच्चे मायने में नुमाइन्दगी नहीं कर सकतीं क्योंकि ये भी पूँजीपति वर्ग के ही किसी न किसी हिस्से से मिलने वाले चन्दों व अनुदानों पर चलती हैं और इसलिए पूँजीपति वर्ग के हितों की ही नुमाइन्दगी करती हैं। लेकिन फिर भी एक फ़ासीवादी पार्टी, मसलन भाजपा, और अन्य पूँजीवादी दलों में अन्तर होता है। फ़ासीवादी दल मेहनतकश जनता पर पूँजी की नंगी, बर्बर तानाशाही को स्थापित करने और उसके सभी जनवादी हक़ों को वस्तुत: छीन लेने का काम करता है। संकट के दौर में ठीक इसी वजह से पूँजीपति वर्ग का बड़ा हिस्सा फ़ासीवादी भाजपा को समर्थन दे रहा है।

आम मेहनतकश जनता के फ़ौरी और दूरगामी हितों को साधने का काम उसकी स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पार्टी ही कर सकती है। आम मेहनतकश जनता के स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पक्ष को प्रस्तुत करते हुए भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी इस बार के लोकसभा चुनाव में भागीदारी कर रही है। इसके पहले वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव एवं इसके उपरान्त कुछ राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा भागीदारी की गयी थी। इस बार के लोकसभा चुनाव में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) ने छह लोकसभा क्षेत्रों से अपने उम्मीदवारों को उतारा है : दिल्ली उत्तर-पूर्व, दिल्ली उत्तर-पश्चिम, मुम्बई उत्तर-पूर्व, पुणे, अम्बेडकरनगर और कुरुक्षेत्र, हालाँकि, साज़िशाना ढंग से उत्तर-पूर्व मुम्बई से आरडबल्यूपीआई के उम्मीदवार का पर्चा रद्द कर दिया गया है।

RWPI की चुनाव में यह भागीदारी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप है, जिसके तहत चुनाव प्रचार के दौरान पार्टी द्वारा समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है, मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के असली चरित्र को बेनक़ाब किया जा रहा है और जनता के बीच पूँजीवादी चुनावी पार्टियों और पूँजीपतियों के रिश्तों को उजागर किया जा रहा है। साथ ही, जनता के सामने यह बात स्पष्ट की जा रही है कि महज़ चुनावों के ज़रिये ही मौजूदा व्यवस्था का ध्वंस और एक नयी समाजवादी व्यवस्था का निर्माण नहीं हो सकता है, लेकिन इसके बावजूद पूँजीवादी व्यवस्था में जनता द्वारा अकूत कुर्बानियों और संघर्ष के बाद जीते गये सीमित अधिकारों को भी काग़ज़ी से वास्तविक

(पेज 8 पर जारी)

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा पाँच लोकसभा सीटों पर रणकौशलात्मक भागीदारी की विस्तृत रिपोर्ट

(पेज 7 से आगे)

तभी बनाया जा सकता है और इसके ज़रिये जनता के वर्ग संघर्ष को उन्नत तभी किया जा सकता है, जब जनता पूँजीवादी चुनावों में भी मेहनतकशों और मज़दूरों की नुमाइन्दगी करने वाली मज़दूर पार्टी के उम्मीदवारों को चुने। इसके ज़रिये सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता अपने स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को मज़बूत करती है।

इस बार के चुनाव इस रूप में महत्वपूर्ण है कि आज देश एक नाज़ुक दौर से गुज़र रहा है। मोदी सरकार की कारगुज़ारियों से पिछले दस वर्ष से देश की जनता त्रस्त है। इन दस सालों में जनता के हिस्से भूख, बेरोज़गारी, बेतहाशा बढ़ती महँगाई, और घोटालों की सौगात ही आयी है। एक फ़ासीवादी पार्टी होने के कारण भाजपा ने पूँजीपरस्त नीतियों को नंगई से लागू किया है। जो अधिकार देश की मेहनतकश जनता ने लड़कर हासिल किये थे, उन्हें भी इन दस सालों में खोखला कर दिया गया है। यह बात जानते हुए भी कि चुनावों के ज़रिये फ़ासीवादी उभार को रोका नहीं जा सकता है, इन चुनावों में भाजपा की वोटबन्दी करना अतिआवश्यक है। चुनावों के ज़रिये ही फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त नहीं दी जा सकती है क्योंकि पूँजीवादी राज्यसत्ता का फ़ासीवादी संघ परिवार ने आन्तरिक टेकओवर किया है और सरकार से बाहर जाने पर भी वह समाप्त नहीं होगा बल्कि समाज और राजनीति में इसकी पकड़ बनी रहेगी और पूँजीवाद की दीर्घकालिक मन्दी की स्थितियों में यह फिर से सत्ता में और भी ज़्यादा आक्रामक तरीके से पहुँचेगा। लेकिन इसके बावजूद भाजपा की हार उसके लिए एक तात्कालिक झटका अवश्य होगी और वह तात्कालिक अर्थों में कार्यकारिणी को उसके प्रत्यक्ष नियन्त्रण से बाहर कर देगी। इससे देश की क्रान्तिकारी शक्तियों व मेहनतकश जनता को अपने आपको राजनीतिक रूप से गोलबन्द और संगठित करने का एक अवसर मिलेगा। इस बात का प्रचार आज देश के जिन राज्यों में 'आरडब्ल्यूपीआई' का विस्तार है, वहाँ किया जा रहा है।

सीमित ताक़त के बावजूद जिन लोकसभा क्षेत्रों में 'आरडब्ल्यूपीआई' के उम्मीदवार खड़े हैं, वहाँ मेहनतकश जनता तक असली मुद्दों को पहुँचाने के लिए हर सम्भव प्रयास किया जा रहा है। इस प्रचार के दौरान देश के विभिन्न हिस्सों में पार्टी को मज़दूरों, ग़रीब किसानों, रेहड़ी-खोमचा लगाने वाले, छोटे दुकान वाले और आम नौकरीपेशा लोगों के बीच अच्छा समर्थन मिल रहा है। कई इलाक़ों में ऐसे छात्र-युवा जो बेरोज़गारी से त्रस्त हैं, उन्होंने भी 'आरडब्ल्यूपीआई' को अपना समर्थन दिया है। आज इसी का नतीज़ा है कि जिन लोकसभा सीटों पर 'आरडब्ल्यूपीआई' के उम्मीदवार खड़े है, वहाँ पार्टी की वालण्टियर कमिटियाँ खड़ी हो गयी है। आगे हम 'आरडब्ल्यूपीआई' की चुनाव में भागीदारी की रपट पेश कर रहे हैं।

अम्बेडकरनगर (उत्तर प्रदेश) लोकसभा सीट पर भागीदारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की ओर से उत्तर प्रदेश के सन्त कबीर नगर लोकसभा क्षेत्र में चुनाव में भागीदारी की जा रही है। विगत एक दशक से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी इस इलाक़े में मेहनतकश आबादी को संगठित करते हुए उनके हक़ों के लिए लड़ रही है। यहाँ से 'आरडब्ल्यूपीआई' की ओर से साथी मित्रसेन चुनाव लड़ रहे हैं। अम्बेडकर नगर में पिछले लम्बे समय से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ता विभिन्न सवालों पर जनता को संगठित करते रहे हैं और उनके नेतृत्व में बहुत सी लड़ाइयाँ जीती गयी हैं। इस लोकसभा क्षेत्र का इलाक़ा बड़ा है जिसमें क़रीब 20 लाख मतदाता हैं। इलाक़े की बड़ी आबादी अपनी जीविका के लिए मज़दूरी पर निर्भर है। इलाक़े में काम न मिलने से बहुत बड़ी आबादी दिल्ली, मुम्बई, पंजाब, गुजरात जैसी जगहों पर जाकर कारख़ानों-खेतों में खटती है। जो लोग यहीं रुककर खेतों, ईंट भट्ठों, भवन निर्माण आदि में काम करते हैं, उन्हें पूरे महीने काम नहीं मिलता। सीधे शब्दों में इस इलाक़े में भयंकर बेरोज़गारी है। मोदी सरकार की अमीरपरस्त नीतियों की सबसे भयंकर मार इसी आबादी पर पड़ी है। महँगाई से सबसे ज़्यादा यही आबादी परेशान है। इसके अतिरिक्त पूरे इलाक़े में शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था भी जर्जर है।

मौजूदा सांसद पिछला चुनाव जीतने के बाद कभी जनता के बीच झाँकने तक नहीं आये हैं। जबकि 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ता न केवल लोगों के तमाम सवालों पर संघर्ष करते रहे हैं बल्कि इलाक़े में आगजनी, बाढ़ बीमारी से लेकर तमाम परेशानियों में लोगों के साथ खड़े रहने और उनका सहयोग करने में भी आगे रहे हैं। 'आरडब्ल्यूपीआई' इस इलाक़े की जनता की जायज़ माँगों को लेकर इस चुनाव में उतरी है। यही कारण है कि 'आरडब्ल्यूपीआई' द्वारा उठाये जा रहे मुद्दों से इस क्षेत्र की मज़दूर-मेहनतकश जनता सहमत होकर साथ आ रही है।

मज़दूर पार्टी द्वारा इन इलाक़ों में, गाँव में नुक्कड़ सभाएँ की गयी और पैदल मार्च निकाले गये। इसके अतिरिक्त कई इलाक़ों में लोगों के बीच में बैठकें की गयी और हज़ारों की संख्या में पर्चे वितरित किये गये। इस सीट पर पाँचवें चरण के तहत 25 मई को वोट डाले जायेंगे।

दिल्ली (उत्तर-पश्चिम) लोकसभा सीट पर भागीदारी

दिल्ली उत्तर पश्चिम लोकसभा सीट से 'आरडब्ल्यूपीआई' की ओर से साथी अदिति चुनाव लड़ रही हैं। इस क्षेत्र में 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ता काफ़ी समय से आम मेहनतकाश जनता को संगठित करते आये हैं। इस लोकसभा क्षेत्र में क़रीब 24 लाख मतदाता है। इस क्षेत्र में बड़ी तादाद में मेहनतकश आबादी रहती है, जो महँगाई, ग़रीबी, बेरोज़गारी जैसी समस्याओं से सबसे ज़्यादा त्रस्त है। कोरोना काल में मोदी सरकार द्वारा लादे गये अनियोजित लॉकडाउन के कारण जब इस इलाक़े के मज़दूरों को तमाम तकलीफ़ें झेलनी पड़ रही थी, तब 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ता ही जनता के साथ खड़े थे। इस सीट पर पिछले अप्रैल माह से 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ता द्वारा प्रचार किया जा रहा है। इस दौरान सूरज पार्क, राजा विहार, गड्ढा झुग्गी, शाहबाद डेयरी, मेट्रो विहार और स्वर्ण जयन्ती विहार के रिहायशी इलाक़ों में डोर टू डोर अभियान चलाया गया है। इसके साथ ही उत्तर पश्चिम दिल्ली के औद्योगिक इलाक़ों जैसे पीरागढ़ी आदि इलाक़ों में भी व्यापक प्रचार अभियान चलाया गया। प्रचार अभियान के दौरान यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि जनता केन्द्र में बैठी मोदी सरकार की जनविरोधी नीतियों से त्रस्त है तथा इस क्षेत्र की आम मेहनतकश जनता हमारी माँगों के साथ है। विशेषकर आरडबल्यूपीआई द्वारा उठायी जा रही औद्योगिक इलाक़ों में मज़दूर मेस शुरू करने की माँग से मज़दूर प्रभावित हैं।

रिपोर्ट लिखे जाने तक क़रीब 200 नुक्कड़ सभाएँ इस संसदीय क्षेत्र में की जा चुकी है एवं क़रीब 25000 पर्चे बाँटे जा चुके हैं।

दिल्ली (उत्तर-पूर्व) लोकसभा सीट पर भागीदारी

दिल्ली उत्तर-पूर्व लोकसभा सीट से आरडबल्यूपीआई की ओर से साथी योगेश चुनाव लड़ रहे हैं। इस क्षेत्र में 'आरडब्ल्यूपीआई' के नेतृत्व में मज़दूरों ने शानदार संघर्ष लड़े और जीते हैं। अभी हाल ही में फ़रवरी और मार्च के महीने में हुई बादाम मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व आरडबल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं ने किया था। इस हड़ताल में बादाम मज़दूरों की माँग के आगे मालिकों और प्रशासन को झुकना पड़ा था।

इस इलाक़े में भी अप्रैल माह से ही चुनाव प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। खजूरी में डोर टू डोर अभियान, नुक्कड़ सभाएँ और जनसभा आयोजित कर सघन प्रचार किया गया है। मुस्तफ़ाबाद के इलाक़े में व्यापक पर्चा वितरण और नुक्कड़ सभाएँ की गयी हैं। इस इलाक़े में बाइक रैली और पदयात्रा निकाली गयी है। करावलनगर के बादाम मज़दूरों के रिहाशयी इलाक़ों में नुक्कड़ सभाओं के ज़रिये चुनाव प्रचार अभियान चलाया गया है एवं इस इलाक़े में एक रैली भी निकाली गयी, जिसमें भारी संख्या में बादाम मज़दूर शामिल हुए।

ग़ौरतलब है कि उपरोक्त ये तीन इलाक़े ऐसे रहे है, जहाँ चार साल पहले सीएए-एनआरसी विरोधी आन्दोलन के दौरान संघी साम्प्रदायिक ताक़तों द्वारा दंगे भड़काये गये थे। भाजपा और संघ द्वारा इन इलाक़ों में अपना वोट पुख़्ता करने के लिए जनता का साम्प्रदायिक आधार पर ध्रुवीकरण करने का प्रयास किया जा रहा है। हालाँकि, इस इलाक़े के धनी मध्य वर्ग के एक हिस्से और निम्न मध्य वर्गीय आबादी के एक छोटे हिस्से को छोड़ दें, तो संघ व भाजपा द्वारा की गयी साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की कोशिशें क़ामयाब होती नहीं दिख रही है। वहीं इस इलाक़े की मुस्लिम आबादी के बीच इंडिया गठबंधन द्वारा ख़ुद को साम्प्रदायिक भाजपा के विकल्प के तौर पर पेश किया जा रहा है। यह सच है कि मुसलमान आबादी का बड़ा हिस्सा कांग्रेस को किसी दूरगामी विकल्प के तौर पर नहीं देखता है, लेकिन इन चुनावों में फ़ासीवादी मोदी-शाह की जोड़ी को हराने के लिए तात्कालिक तौर पर उसे समर्थन दे सकता है। लेकिन उनके बीच भी 'आरडब्ल्यूपीआई' के प्रचार को

(पेज 9 पर जारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा पाँच लोकसभा सीटों पर रणकौशलात्मक भागीदारी की विस्तृत रिपोर्ट

(पेज 8 से आगे)

बेहद सकारात्मक प्रतिक्रिया मिली है। निश्चित तौर पर, इस व्यापक उत्पीड़ित आबादी के बीच लम्बे राजनीतिक अभियानों के ज़रिये उन्हें क्रान्तिकारी रूप में संगठित करने की आवश्यकता बनी हुई है। इस इलाक़े के लोगों के बीच आरडबल्यूपीआई द्वारा लगातार इस बात का प्रचार किया जा रहा है कि भाजपा के साम्प्रदायिक फ़ासीवाद का मुक़ाबला धार्मिक पहचान के आधार पर नहीं बल्कि अपनी वर्गीय पहचान के आधार पर संगठित होकर ही किया जा सकता है। इस इलाक़े की मज़दूर आबादी और निम्न मध्यवर्गीय आबादी के बीच भाजपा का जनाधार घटा है। अपनी पूँजीपरस्त व जनविरोधी नीतियों के कारण वह नंगी हुई है। प्रचार अभियान के दौरान अधिकांश लोग ऐसे मिले जो भाजपा कि नीतियों से त्रस्त हैं। उनमें से कई तात्कालिक विकल्प के तौर पर कांग्रेस व आप के इण्डिया गठबन्धन को देख रहे हैं, लेकिन इसे लेकर वे ख़ुद भी सशंकित है। इस आबादी के बीच 'आरडब्ल्यूपीआई' यह बात लेकर जा रही है कि जहाँ 'आरडब्ल्यूपीआई' के रूप में जनता के अपने उम्मीदवार मौजूद हैं, वहाँ किसी मजबूरी के विकल्प को चुनने के बजाय मेहनतकश उम्मीदवार को चुना जाये।

कुरुक्षेत्र (हरियाणा) लोकसभा सीट पर भागीदारी

कुरुक्षेत्र लोकसभा सीट से 'आरडब्ल्यूपीआई' की तरफ़ से साथी रमेश खटकड़ प्रत्याशी है। इस लोकसभा सीट पर पिछले एक माह से ज़्यादा समय से चुनाव प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। इस क्षेत्र में वर्षों से 'आरडब्ल्यूपीआई' सक्रिय रही है एवं जनता के विभिन्न मुद्दों को लेकर लम्बे समय से संघर्षरत हैं। 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ताओं द्वारा महँगाई, बेरोज़गारी, शिक्षा, बिजली, पानी, सरकारी स्कूलों की बन्दी, रोडवेज़ के निजीकरण, जातिवाद और साम्प्रदायिकता आदि मसलों पर मुखरता से आवाज़ उठायी जाती रही है। यहाँ एक बड़ी आबादी खेतिहर मज़दूरों, छोटे और मँझोले किसानों की है, जिनके हालात मोदी और खट्टर सरकार के डबल इंजन की सरकार के कार्यकाल में बद से बदतर हो गयी है। वहीं इस क्षेत्र में छात्रों-युवाओं की आबादी के हिस्से में सिर्फ़ बेरोज़गारी और दर-दर की ठोकरें ही आयी हैं। कॉलेजों-विश्वविद्यालयों, आईटीआई-पॉलीटेक्निक आदि से तमाम डिग्रियाँ हासिल करने के बावजूद हरियाणा के नौजवान बेकार भटक रहे हैं। प्रचार के दौरान इस क्षेत्र की जनता में मोदी सरकार के ख़िलाफ़ असन्तोष दिखाई दिया। रोज़गार गारण्टी क़ानून लागू करने, धनी किसानों व कुलकों समेत तमाम अमीरों पर विशेष कर लगाकर ग़रीब किसानों के लिए रियायती दरों पर खाद-बीज का प्रबन्ध करने एवं खेतिहर मज़दूरों को श्रम क़ानून के अन्तर्गत लाने की माँगों के साथ इस क्षेत्र की जनता जुड़ रही है व अपना समर्थन दे रही है।

इस लोकसभा क्षेत्र के चौशाला, रोहेड़ा, थेहबाहरी, बीड़ बांगड़ा, मण्डावल, फ़रियाबाद, सन्तोख माजरा, सेरदा, पाई, भाणा, सोंगल, नन्दकरण माजरा, कोटड़ा, किछाना गाँवों में 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ताओं द्वारा सघन प्रचार अभियान चलाया गया है।

पुणे (महाराष्ट्र) लोकसभा सीट पर भागीदारी

पुणे लोकसभा सीट से 'आरडब्ल्यूपीआई' की ओर से साथी अश्विनी खैरनार चुनाव लड़ रही हैं। महाराष्ट्र के इस हिस्से में 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ता लम्बे समय से सक्रिय रहे हैं। यहाँ पर निर्माण मज़दूरों व आम मेहनतकश आबादी के विविध मुद्दों को लेकर 'आरडब्ल्यूपीआई' के नेतृत्व में संघर्ष भी लड़े गये हैं। इसके साथ ही निम्न मध्यवर्गीय इलाक़ों में भी 'आरडब्ल्यूपीआई' के कार्यकर्ता लगातार सक्रिय रहे हैं। इस क्षेत्र में चुनाव प्रचार अभियान निरन्तर डोर टू डोर अभियान व नुक्कड़ सभाओं के रूप में, रैलियों के रूप में, जुलूसों के रूप में और घर-घर सघन जनसम्पर्क अभियानों के रूप में चलाया गया है। चुनाव प्रचार अभियान के दौरान लोगों से बातचीत में यह सामान्य तौर पर सुनने को मिल रहा है कि वे केन्द्र व राज्य में मौजूद एनडीए सरकार से त्रस्त हैं तथा वे उसका विकल्प चाहते हैं। यह सच है कि विकल्पहीनता की स्थिति में आज मेहनतकश आबादी का विचारणीय हिस्सा तात्कालिक विकल्प के तौर पर इण्डिया गठबन्धन को देख रहा है, परन्तु इस गठबन्धन के दलों और उनकी सरकारों के इतिहास के कारण वह ख़ुद भी इस पर पूरा भरोसा नहीं कर पा रही है। इण्डिया गठबन्धन में शामिल जो दल आज भाजपा की मुखालफ़त की बात कर रहे है, वे कल तक ख़ुद ही उनकी गोद में बैठे हुए थे, और इसकी भी कोई गारण्टी नहीं कि ये फ़िर पलटी न मारे।

'आरडब्ल्यूपीआई' के वॉलण्टियर व सदस्य लगातार इस बाबत प्रचार कर रहे हैं कि चूँकि एक मेहनतकशों की पार्टी का उम्मीदवार इस क्षेत्र में मौजूद है, जिस पार्टी का संघर्षों का एक इतिहास इस क्षेत्र में रहा है, इसलिए आज इस या उस बुर्जुआ पार्टी को समर्थन देने से बेहतर है कि मेहनतकश जनता के स्वतन्त्र क्रान्तिकारी विकल्प के तौर पर 'आरडब्ल्यूपीआई' को अपना समर्थन दिया जाये और इसके उम्मीदवर को जिताया जाये। जनता के बीच प्रचार को व्यापक सकारात्मक प्रतिसाद मिला है। पार्टी के एजेण्डा से बहुसंख्यक मेहनतकश जनता सहमति जता रही है।

उत्तर-पूर्व मुम्बई लोकसभा सीट पर साथी बबन ठोके का पर्चा साज़िशाना ढंग से किया गया रद्द

मुम्बई उत्तर-पूर्व से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) के कार्यकर्ता साथी बबन ठोके उम्मीदवार थे। पिछले एक माह से सघन चुनाव प्रचार अभियान भी चलाया जा रहा था व उन्हें जनता का अच्छा-ख़ासा समर्थन भी मिल रहा था। लेकिन साथी बबन द्वारा दायर किये गये तीन नामांकन के आवेदनों को ख़ारिज कर दिया गया। कॉमरेड बबन ने तीन नामांकन पत्र दाख़िल किये थे जिनमें अनुसूचित जाति और सामान्य कैटेगिरी, दोनों ही शामिल थे। मगर कॉमरेड बबन ठोके के तीनों आवेदनों को मामूली तकनीकी कारणों और नियमों का हवाला देते हुए और अधिकारियों की वजह से हुई देरी का ठीकरा प्रत्याशी पर ही फोड़ते हुए रद्द कर दिया गया।

पहले तो बबन ठोके के एस.सी. श्रेणी में भरे गये नामांकन पत्र पर अनुचित सन्देह करते हुए अधिकारी ने उन्हें दूसरा आवेदन भरने को कहा। इसके बाद सामान्य श्रेणी के आवेदन पर जारी की गयी। पहली रसीद में कहा कि सभी फ़ील्ड सही तरीक़े से भरे गये हैं। लेकिन नामांकन दाख़िल करने के अन्तिम दिन, देर रात 12 बजे साथी बबन को फ़ोन करके (जिसका प्रमाण सरकार के सीसीटीवी कैमरे में आसानी से देखा जा सकता है) यह बताया गया कि स्टैम्प से सम्बन्धित फ़ील्ड में से एक ग़लत तरीक़े से भरा गया है और उसे सुबह तक "दुरुस्त" करने के लिए कहा गया। 4 मई को स्टैम्प वेण्डरों के पास इस "ग़लती" को ठीक कराने की कोशिश की गयी तो पता चला कि स्टैम्प वेण्डरों पर भी पूँजीवादी पार्टियों ने स्टैम्प जारी न करने का दबाव डाला हुआ था। इन सबके बावजूद सभी कागज़ात दुरुस्त कराकर 11 बजे से पहले कार्यालय पहुँचा गया, पर अधिकारियों ने आवेदन लेने में देरी की और बाद में आवेदन देर से लाने का हवाला देकर इसे ख़ारिज कर दिया गया। इसी तरह अन्य कई उम्मीदवारों के आवेदन ऐसे ही मामूली आधार पर ख़ारिज कर दिये गये हैं। चुनाव आयोग के दफ़्तर में आर.ओ. की कुछ "मुख्य" उम्मीदवारों से अलग बातचीत का सिलसिला भी जारी था। ज़ाहिरा तौर पर आर.ओ. पर ऐसे क़दम उठाने का दबाव था।

निश्चित ही, अन्तिम समय पर तकनीकी खामियाँ निकालना, आवेदन जमा करने में देरी करना और अन्ततः नामांकन ख़ारिज कर देना चुनाव आयोग का 'आरडब्ल्यूपीआई' के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया है और इसका कारण 'आरडब्ल्यूपीआई' द्वारा समाजवादी पार्टी, शिवसेना और भाजपा को पेश की जा रही चुनौती और मानखुर्द-शिवाजीनगर क्षेत्र में साथी बबन की बढ़ रही लोकप्रियता थी। इस इलाक़े में सीएए-एनआरसी के विरुद्ध जुझारू जनान्दोलन का नेतृत्व करने से लेकर इलाक़े की मेहनतकश जनता की तमाम आर्थिक व सामाजिक माँगों पर दर्जनों आन्दोलनों और अभियानों को नेतृत्व देने के कारण 'आरडब्ल्यूपीआई' का मज़बूत समर्थन आधार और इसकी गहरी पहचान है। इस बात से कई पूँजीवादी दल डरे हुए थे। यही कारण है कि अन्यायपूर्ण तरीके से साथी बबन का नामांकन रद्द किया गया। यही चुनाव आयोग फडणवीस के फ़र्ज़ी हलफ़नामे और प्रधानमन्त्री मोदी की फ़र्ज़ी डिग्री के मसले पर पर्दा डालने का काम करता है, वहीं जनता के असल प्रतिनिधियों के कई आवेदनों को मामूली तकनीकी आधार पर ख़ारिज कर देता है। इससे चुनाव आयोग की पूँजीवादी व्यवस्था और पार्टियों के प्रति निष्ठा साफ़ हो जाती है।

सूरत से इन्दौर तक के मसले से साफ़ है कि साम, दाम, दण्ड, भेद का इस्तेमाल कर सभी विपक्षी दलों और उम्मीदवारों का नामांकन ख़ारिज करने की साज़िश रची जा रही है और चुनाव आयोग मूक दर्शक बना बैठा है। 'आरडब्ल्यूपीआई' चुनाव आयोग के इस मनमाने रवैये के ख़िलाफ़ सभी ज़रूरी क़ानूनी कार्रवाई का रास्ता भी अपनायेगी। 'आरडब्ल्यूपीआई' के प्रवक्ता ने बताया कि पार्टी न केवल विधान सभा चुनाव में इससे ज़्यादा ताक़त के साथ उतरेगी बल्कि चुनाव आयोग के चरित्र का पुरज़ोर तरीक़े से पर्दाफ़ाश भी करेगी।

लोकसभा चुनाव में ईवीएम, केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) और न्यायपालिका से सहयोग के भरोसे मोदी सरकार

(पेज 1 से आगे)

का इस्तेमाल कर कई इलाकों में उन समुदायों के लोगों को वोट डालने से रोकना, उसमें बाधा पैदा करना और फ़र्ज़ी जाँच के ज़रिये उन लोगों से वोटिंग का अधिकार छीनना, जिनसे भाजपा को वोट मिलने की कोई उम्मीद नहीं है। इन चार तरक़ीबों के आधार पर भाजपा अपनी सरकार के विरुद्ध पूरे देश में असन्तोष और गुस्से की लहर के बावजूद तीसरी बार नरेन्द्र मोदी को सत्ता में पहुँचाने की फ़िराक़ में है। हम यह बात किस आधार पर कह रहे हैं? इन सभी के ठोस सबूत मौजूद हैं। आइए, देखते हैं कैसे।

पहली तरक़ीब के प्रमाण देखें : नरेन्द्र मोदी और भाजपा के कई नेता लगातार सीधे-सीधे साम्प्रदायिक बयान दे रहे हैं। मोदी ने ही पहले अपनी चुनावी सभाओं में कहा कि अगर 'इण्डिया' गठबन्धन के लोग सत्ता में आये तो वे लोगों की सम्पत्ति छीनकर उन्हें दे देंगे जो "घुसपैठिये" हैं और "ज़्यादा बच्चे पैदा करते हैं"! मनमोहन सिंह के एक पुराने बयान को मोदी ने अपनी बात के प्रमाण के तौर पर तोड़-मरोड़कर पेश किया, जिसमें मनमोहन सिंह ने वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं कही थी। ज़ाहिर है, यह एक साम्प्रदायिक कथन था जिसमें इशारा सीधे मुसलमानों के प्रति किया गया था और उसके लिए मुसलमानों के प्रति संघी हाफ़पैण्टियों द्वारा फैलाये गये पूर्वाग्रहों का इस्तेमाल किया गया था। क्योंकि आँकड़ों से देखें तो न तो मुसलमान हिन्दुओं से ज़्यादा बच्चे पैदा करते हैं और न ही वे घुसपैठिये हैं। वे इसी देश के नागरिक हैं। इनकी नागरिकता पर मोदी सवाल इसलिए खड़ा कर रहा है क्योंकि संघी हाफ़पैण्टियों की नागरिकता की अवधारणा ही धर्म पर आधारित है। सीधे-सीधे साम्प्रदायिक बयानबाज़ी का अगला उदाहरण था जिसमें मोदी ने दावा किया कि कांग्रेस हिन्दू औरतों का मंगलसूत्र छीन लेगी; इसके बाद दावा किया गया कि अगर आपके पास दो भैंस है, तो एक भैंस छीन कर कांग्रेस अपने चहेतों (यानी मुसलमानों!) को दे देगी! इसी प्रकार, मीट-मछली खाने को लेकर भी साम्प्रदायिक और फ़िरकापरस्त बयानबाज़ियाँ हार के डर से घबराये मोदी और भाजपा नेता लगातार किये जा रहे हैं। यह हार की घबराहट में मोदी की बौखलाहट को दिखला रहा है।

लेकिन केचुआ (केन्द्रीय चुनाव आयोग) वाकई एक रीढ़विहीन केचुए की तरह बर्ताव कर रहा है। इस सारी साम्प्रदायिक बयानबाज़ियों और चुनावी भाषणों के बाद केचुआ क्या करता है? वह मोदी को कोई चेतावनी नहीं देता, उसके नामांकन को रद्द कर उसे अयोग्य नहीं घोषित करता! वह सभी पार्टियों को एक सुझाव जारी करता है और भाजपा अध्यक्ष जेपी नड्डा को पत्र लिखता है! यह सम्पादकीय लिखे जाने तक भी साम्प्रदायिक आधार पर भाजपा नेता लगातार चुनावी भाषण दे रहे हैं, धर्म को खुल्लमखुल्ला इस्तेमाल कर रहे हैं, राम मन्दिर के नाम पर वोट माँग रहे हैं, पुरी में तो भाजपा नेता सम्बित पात्रा ने हिन्दू धर्म के एक भगवान जगन्नाथ को ही मोदी का भक्त बता दिया! *लेकिन चुनाव आयोग कुछ भी नहीं बोल रहा।* पूरे देश से हज़ारों शिक़ायत पत्र इस बारे में चुनाव आयोग को भेजे जा चुके हैं और लेकिन वह कुछ भी जवाब नहीं दे रहा है। स्पष्ट है, चुनाव आयोग मोदी की गोद में बैठा है। बैठा भी क्यों न हो? चुनाव आयुक्त हैं कौन लोग? तीन में से दो चुनाव आयुक्तों को नियुक्त करने से पहले भाजपा ने चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति के नियमों में परिवर्तन कर एक ऐसी नयी व्यवस्था लायी जिसमें यह नियुक्ति करने वाले निकाय में तीन लोगों का प्रावधान किया गया : प्रधानमन्त्री, केन्द्रीय गृहमन्त्री और प्रमुख विपक्षी दल के नेता। ऐसे में, बहुमत तो हमेशा सरकार का ही होगा और नतीजतन चुनाव आयुक्त वे ही लोग चुने जायेंगे जो मोदी-शाह को भायेंगे! ऐसा ही हुआ भी। तो केचुआ की रीढ़ ग़ायब है, तो इसमें ताज्जुब करने वाली कोई बात नहीं है।

अब दूसरी तरक़ीब पर आते हैं : ईवीएम का इस्तेमाल और केचुआ व राज्यसत्ता के अंगों-उपांगों द्वारा चुनाव की प्रक्रिया और उनके नतीजों में गड़बड़ी। इसके तमाम प्रमाण तो 2019 के लोकसभा चुनावों से लेकर उसके बाद हुए सभी विधानसभा चुनावों में मिलते रहे हैं, लेकिन इस बार सबकुछ भयंकर और खुल्लमखुल्ला अन्दाज़ में हो रहा है। सबसे पहले तो ईवीएम का ही सवाल है, जिसकी अविश्वसनीयता मौजूदा चुनावों की प्रक्रिया में भी बार-बार सामने आ चुकी है। पहला सवाल तो ईवीएम मशीनों में ही गड़बड़ किये जाने का है। दूसरा प्रश्न है वोटिंग के बाद ईवीएम के भण्डारण से जुड़े मानकों का पालन न किया जाना, जिसकी वजह से बाद में उनमें गड़बड़ी करना या उनकी जगह दूसरी ईवीएम मशीनों को रख देना सम्भव हो जाता है। *ग़ौरतलब है कि 19 लाख ईवीएम मशीनें ग़ायब हैं! इतनी ईवीएम मशीनें कहाँ गयीं?* यह पूरा मसला भयंकर है और चिन्ताजनक सन्देह के घेरे में है। तीसरी बात, केचुआ ईवीएम के उत्पादन में कौन से उपक्रम या कम्पनियाँ लगी हैं, इसे तक ज़ाहिर नहीं करना चाहता है। जहाँ तक सूचना है, ईवीएम की मैन्युफ़ैक्चरिंग की प्रक्रिया में ही भाजपाइयों और संघी हाफ़पैण्टियों को घुसाया जा चुका है। ईवीएम मशीनों की प्रोग्रामिंग व सोर्स कोड को उजागर करने पर भी केचुआ सीधा इंकार कर चुका है। ऐसे में, ईवीएम के बारे में जनता कुछ नहीं जान सकती। उसे कौन बनाता है, उसकी सोर्स कोड व प्रोग्रामिंग के विवरण क्या हैं, 19 लाख ईवीएम ग़ायब कैसे हो गयीं, इसके बारे में केचुआ व सरकार ने क्या किया? ये सारे सवाल ईवीएम मशीनों को सीधे सन्देहास्पद बना देते हैं। न्यायपालिका के सर्वोच्च शिखर सुप्रीम कोर्ट तक के सामने ये सारे सवाल रखे गये। उससे याचिकाकर्ताओं ने पूछा कि इन सारे सन्देहों का आंशिक इलाज, यानी कम-से-कम 100 प्रतिशत वीवीपैट मिलान, क्यों नहीं किया जा सकता, तो इस पर सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग को जवाब देने को कहा और जब चुनाव आयोग ने बोल दिया कि यह सम्भव नहीं है क्योंकि यह बहुत भारी-भरकम उपक्रम बन जायेगा और जनता को ज़्यादा सन्देह करने की आदत से मुक्त हो जाना चाहिए तो सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग से कहा, "ओके" और फिर याचिकाकर्ताओं की ओर पलटा और उनको ही डाँटकर उनकी याचिका ख़ारिज कर दी और कहा कि ज़्यादा शक़ करना अच्छी बात नहीं है! *यह किस प्रकार का निर्णय है?*

ईवीएम पर शक़ एकदम वाजिब शक़ है और इस प्रकार के सन्देह और प्रश्नों से ही जनता एक पूँजीवादी व्यवस्था में हासिल बेहद सीमित जनवादी अधिकारों की हिफ़ाज़त कर सकती है। उन सन्देहों का निवारण करना इस व्यवस्था के निकायों, यानी उसकी कार्यपालिका और न्यायपालिका का कर्तव्य है। लेकिन ऐसा करने के बजाय जनता को ही शक़ न करने की सलाह दी जा रही है! वह भी तब जबकि इन सन्देहों का एकदम ठोस आधार है और इन चुनावों में दोबारा ये शक़ पुख़्ता हो रहे हैं। पिछले आम चुनावों में ही 544 में से 373 सीटों पर ईवीएम के वोटों की संख्या ग़लत पायी गयी थी। जहाँ तक वीवीपैट मिलान की प्रक्रिया के भारी-भरकम होने का प्रश्न है, तो अगर पूँजीवादी लोकतन्त्र की सबसे बुनियादी प्रक्रिया, यानी अपने प्रतिनिधियों को चुनने और प्रतिनिधि के तौर पर चुने जाने के अधिकार की पारदर्शिता और विश्वसनीयता को सुनिश्चित करने का प्रश्न हो, तो उस पर पर्याप्त धन और सरकारी तन्त्र की शक्ति को क्यों नहीं ख़र्च किया जा सकता है? *अगर देश के नेताओं-नौकरशाहों की ऐय्याशी, ऐशो-आराम और सुरक्षा पर हर वर्ष सरकार खरबों रुपये और लाखों सरकारी कर्मियों को लगा सकती है, तो चुनावों में जनता को मिलने वाले बुनियादी जनवादी अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए यह ख़र्च और प्रयास क्यों नहीं किया जा सकता है?* यह पूरा तर्क ही चालाकी भरा है कि भारत जैसे बड़े देश में बैलट पेपर से चुनाव नहीं हो सकते (पहले तो होते ही थे!) और सौ प्रतिशत वीवीपैट मिलान करना खर्चीला और भारी-भरकम है। नेताओं-मन्त्रियों के विलास और सुरक्षा के लिए उससे ज़्यादा ख़र्च और भार देश की मेहनतकश जनता उठाती है। जब वह भार उठाया जा सकता है, तो यह क्यों नहीं? ईवीएम और वीवीपैट मिलान को लेकर ये माँगें तब और महत्वपूर्ण हो जाती हैं, जब हमें पता चलता है कि ईवीएम की वोटिंग में पिछले आम चुनावों में 544 सीटों में से 373 सीटों पर गड़बड़ी निकली थी। *जब एक समाचार वेबसाइट ने यह खुलासा केचुआ की सूचनाओं के आधार पर ही किया तो उसका केचुआ ने क्या जवाब दिया? कोई जवाब देने के बजाय उसने इस गड़बड़ी से जुड़ा डेटा ही अपनी वेबसाइट से हटा दिया!* इन सब चीज़ों के बावजूद देश का सर्वोच्च न्यायालय पर आँखों पर पट्टियाँ बाँधे बैठा है। आम जनता को यह समझना चाहिए कि ऐसा नहीं है कि न्यायपालिका का कोई वर्ग चरित्र नहीं होता है। इस घटना और तमाम अन्य घटनाओं से यह बात साबित होती है। *मसलन, इलेक्टोरल बॉण्ड के बारे में सूचना जारी करवाने का काम तो सुप्रीम कोर्ट ने करवाया लेकिन जब उसमें काले धन को सफेद बनाने के स्पष्ट प्रमाण कई कम्पनियों के मामले में नज़र आये तो उन कम्पनियों की जाँच और उन पर कार्रवाई का आदेश न्यायपालिका की ओर से क्यों नहीं दिया गया?*

अब आते हैं चुनाव के दौरान वोटिंग के आँकड़े जारी करने में केचुआ द्वारा की जा रही चोरी और सीनाज़ोरी पर। वोटिंग होने के बाद केचुआ को 48 घण्टे के भीतर वोटिंग के सारे आँकड़े यानी वोटिंग प्रतिशत और साथ ही कुल डाले गये वोटों की संख्या अपनी वेबसाइट पर डालनी होती है। *1961 के चुनाव नियमों* के अनुसार, केचुआ को दो फ़ॉर्म रखने होते हैं 17ए और 17सी। पहला वोटिंग बूथ में आने वाले हर वोटर के विवरण को दर्ज करता है और दूसरा सभी रिकॉर्डेड वोटों को दर्ज करता है। 17सी का पार्ट 1 बेहद महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह इसतेमाल की गयी ईवीएम मशीनों की पहचान संख्या और कुल डाले गये वोटों की संख्या को दर्ज करता है। साथ ही, 17सी यह भी दर्ज करता है कि कितने वोटरों ने वोट न डालने का फ़ैसला किया, कितनों को वोट डालने की अनुमति नहीं दी गयी, आदि। यह फ़ॉर्म वोटिंग समाप्त होने के बाद वोटिंग बूथ पर मौजूद चुनाव अधिकारी द्वारा उम्मीदवारों के एजेण्टों को देना होता है। कई जगहों पर तो इन अधिकारियों ने विपक्षी व निर्दलीय उम्मीदवारों को 17सी फॉर्म देने से ही इंकार कर दिया। मिसाल के तौर पर, वरिष्ठ अधिवक्ता महमूद प्राचा ने यह शिकायत दर्ज करायी है कि रिटर्निंग ऑफिसर ने उन्हें 17सी उपलब्ध ही नहीं कराया। वैसे भी राष्ट्रीय पार्टियों को छोड़ दिया जाय तो अधिकतम उम्मीदवार 1500-2000 पोलिंग बूथों पर अपने एजेण्ट भेज ही नहीं सकते। राष्ट्रीय पार्टियों में भी आज तो भाजपा के पास ही धनबल और फ़ासीवादी संघ परिवार के काडर ढाँचे के बूते यह ताक़त है। ऐसे में, 17सी को 48 घण्टे के भीतर केन्द्रीय चुनाव आयोग की वेबसाइट पर डालने की माँग एकदम जायज़ जनवादी माँग है। लेकिन केचुआ यह कहकर इसमें आनाकानी कर रहा है कि यह जानना जनता का अधिकार नहीं है! वाह! तो फिर किसका अधिकार है? यह सूचना किसी भी प्रकार से गोपनीय सूचना कैसे हो सकती है?

दूसरी बात यह कि चुनाव आयोग ने पहले व दूसरे दौर की वोटिंग के बारे में शुरू में जो आँकड़े बताये और बाद में जो आँकड़े बताये उसमें 5 प्रतिशत से ज़्यादा का अन्तर था। 19 अप्रैल को पहले दौर की वोटिंग के बाद उसी दिन शाम 7 बजे केचुआ ने बताया कि 60 प्रतिशत वोट पड़े हैं। दूसरे दौर की वोटिंग, यानी 26 अप्रैल के ठीक बाद शाम को केचुआ ने बताया कि 60.96 प्रतिशत वोट पड़े हैं। लेकिन 30 अप्रैल को केचुआ ने जो सूचना जारी की उसमें नये ही आँकड़े सामने आये! पहले दौर की वोटिंग में नये आँकड़ों के अनुसार 66.14 प्रतिशत वोट पड़े थे जबकि दूसरे दौर की वोटिंग में 66.71 प्रतिशत वोट पड़े थे! ***यानी दोनों दौरों के लिए नये आँकड़ों के अनुसार क्रमशः 5.5 प्रतिशत और 5.74 प्रतिशत वोट ज़्यादा पड़े थे! ये अतिरिक्त वोट कहाँ से आये? क्या आपको नहीं पता कि इतने फ़र्क़ से तो चुनावों में जीत-हार के नतीजा बदला जा सकता है?***

इस पर विपक्षी दलों ने बहुत-सी

(पेज 11 पर जारी)

लोकसभा चुनाव में ईवीएम, केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) और न्यायपालिका से सहयोग के भरोसे मोदी सरकार

(पेज 10 से आगे)

आपत्तियाँ और सवाल उठाये, लेकिन केचुआ ने कोई जवाब नहीं दिया। इस पर ***एसोसियेशन फॉर डेमोक्रैटिक रिफॉर्म्स (एडीआर)*** नामक एक एनजीओ ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की। चुनाव आयोग से कोर्ट ने जवाबतलब किया। एडीआर ने माँग की थी कि वोटर टर्नआउट का प्रतिशत क्या है और कुल डाले गये वोटों की संख्या क्या है, इसका पूरा डेटा चुनाव आयोग के पास 24 घण्टे के भीतर आ जाता है और यह सूचना कोई गुप्त सूचना नहीं है जिसे किसी से छिपाया जाये, तो केचुआ को इसे फौरन अपनी वेबसाइट पर डालना चाहिए और इसका सहज रास्ता यह है कि केचुआ हर जगह से प्राप्त 17सी फॉर्म की प्रतिलिपि को ही वेबसाइट पर अपलोड कर दे। *ज़रा सुनिए, चुनाव आयोग ने कोर्ट में क्या जवाब दिया : चुनाव आयोग ने कहा कि वह क़ानूनी तौर पर यह सूचना वेबसाइट पर डालने को बाध्य नहीं है और जनता को इसे जानने का कोई बाध्यताकारी क़ानूनी अधिकार नहीं है! यह मोदी सरकार के दौर में समूचे फ़ासीवादी पूँजीवाद का नारा है : "जनता को जानने का अधिकार नहीं है।" जब इलेक्टोरल बॉण्ड के डाटा को सार्वजनिक करने की बात हुई थी तो भी चुनाव आयोग और सरकार ने कहा था कि जनता को यह जानने का अधिकार नहीं है कि किस चुनावी पार्टी को किस स्रोत से कितना चन्दा हासिल हुआ है।* वास्तव में, इलेक्टोरल बॉण्ड की घपलात्मक योजना मोदी सरकार लायी ही इसलिए थी कि सारे पूँजीपतियों को काला धन सफेद करने का मौक़ा मिले और उसका कमीशन भाजपा को मिले, सारे पूँजीपतियों को चन्दे के बदले में धन्धा मिले, जो पूँजीपति इसमें आनाकानी करे, उस पर ईडी और सीबीआई और आयकर विभाग के छापे डलवाकर बाँह मरोड़कर चन्दा वसूला जाये। यह बात अब जनता के सामने आ चुकी है। तब भी मोदी सरकार का नारा था "जनता को जानने का अधिकार नहीं!" अब जब जनता की ओर से वोटिंग के समस्त आँकड़ों को तत्काल सार्वजनिक करने की माँग की जा रही है, तो भी मोदी सरकार और उसकी गोद में बैठे केन्द्रीय चुनाव आयोग का यही नारा है : "जनता को जानने का अधिकार नहीं है।" *यह किस प्रकार का तर्क है?* औपचारिक तौर पर तो पूँजीवादी व्यवस्था भी मानती है कि विदेश सम्बन्धों से जुड़े खुफ़िया मामलों के अलावा (हालाँकि ये भी खुफ़िया रखने की ज़रूरत पूँजीवाद में ही होती है!) जनता को सबकुछ जानने का अधिकार है। और क्यों नहीं होना चाहिए? ऐसे अश्लील तर्क आज मोदी सरकार और उसकी गोद में बैठे राज्यसत्ता के तमाम निकाय सुप्रीम कोर्ट तक में रखते हैं और कोर्ट उसे सुनता है और फिर जनता की ओर से सूचना माँग रहे याचिकाकर्ताओं को ही फटकार लगाकर उनकी याचिका रद्द कर देता है!

साफ़ है कि ईवीएम में गड़बड़ी से लेकर चुनाव में वोटिंग के आँकड़ों तक में हेराफेरी किये जाने का सन्देह बेहद सशक्त है और उसकी मज़बूत बुनियाद है। ये बेबुनियाद शक़ नहीं हैं। भाजपा द्वारा खुले तौर पर साम्प्रदायिक प्रचार और भाषणों पर केचुआ की रीढ़विहीन चुप्पी उसके मोदीपरस्त होने के सन्देहों को पुष्ट करती है।

राज्यसत्ता के समस्त निकायों में फ़ासीवादी घुसपैठ और उसके ऊपर आन्तरिक क़ब्ज़े की बात हम पिछले कई वर्षों से कहते आये हैं और ये सारा घटनाक्रम उसे सही सिद्ध कर रहा है। आज पूँजीवादी जनवाद का महज़ खोल बाकी है। औपचारिक तौर पर वोटिंग होती है लेकिन उसके भी निष्पक्ष, न्यायपूर्ण, पारदर्शी और ईमानदार होने पर गम्भीर सवालिया निशान हैं। और जब जनता उसके बारे में जानना चाहती है तो फ़ासीवादी सरकार का नारा होता है : "जनता को जानने का अधिकार नहीं!" भाजपा के खिलाफ़ बड़े पैमाने पर वोटिंग के कारण तमाम भ्रष्टाचार और हेरफेर के बावजूद अगर भाजपा चुनाव हारकर सरकार से बाहर भी हो जाये, तो राज्यसत्ता में उसकी घुसपैठ पर केवल मात्रात्मक असर ही पड़ सकता है। राज्यसत्ता और समाज में संघ परिवार की फ़ासीवादी घुसपैठ मौजूद रहेगी। *दीर्घकालिक मन्दी के दौर में, किसी अन्य ग़ैर-फ़ासीवादी दल या दलों के गठबन्धन की सरकार के फ़र्ज़ी कल्याणवाद के किसी भी दौर की असफलता तय है और उस असफलता की सूरत में समाज में टुटपुँजिया वर्गों और छोटे पूँजीपति वर्ग की प्रतिक्रिया नये सिरे से उभरेगी, समूचा पूँजीपति वर्ग और भी निर्णायक तरीके से भाजपा व संघ परिवार की बाँहों में जायेगा और पहले से भी आक्रामक तरीके से भाजपा की कोई सरकार आयेगी, जिसके शीर्ष पर कोई ऐसा भयंकर साम्प्रदायिक और दंगाई नेता होगा, जिसकी तुलना में नरेन्द्र मोदी इस देश के लिबरलों को लिबरल लगने लगेगा और वे उसे नॉस्टैल्जिक होकर वैसे ही याद करने लगेंगे जैसे आज आडवाणी और वाजपेयी को करते हैं!* फ़ासीवाद की निर्णायक हार के लिए जनता की शक्तियों को क्रान्तिकारी हिरावल मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में जुझारू जनान्दोलन खड़े करने होंगे, उन्हें आम क्रान्तिकारी राजनीतिक आन्दोलन के रूप में विकसित करना होगा और अन्ततः उसे मौजूदा व्यवस्था के ध्वंस और एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना और निर्माण तक पहुँचाना होगा। लेकिन अभी हम इस सम्पादकीय लेख की मूल विषयवस्तु पर लौटते हुए कुछ और बातें कहना चाहेंगे।

साम-दाम-दण्ड-भेद से चुनावों में जीत हासिल करने के लिए मोदी-शाह की तीसरी और चौथी तरक़ीबें क्या हैं? *तीसरी तरक़ीब* है कई इलाकों से वोटर लिस्ट से उन समुदायों के वोटरों के नाम हटाने की रपटें सामने आ चुकी हैं, जिनकी ओर से भाजपा को आम तौर पर वोट नहीं पड़ते। 26 अप्रैल को मथुरा में अनेक मुसलमान वोटरों ने पाया कि उनका नाम वोटर लिस्ट से हटा दिया गया है। इसी प्रकार, गुजरात में 700 मुसलमान मछुआरों के नाम वोटर लिस्ट से ग़ायब थे। इसी प्रकार के मामले पूरे देश से सामने आये हैं। अगर उन्हें जोड़ दिया जाय तो कुल हज़ारों या लाखों वोटों का फ़र्क आ जायेगा। इसी प्रकार, *चौथी तरक़ीब* यह है कि लोगों को वोट डालने से रोका जाये, विशेषकर उन लोगों को जिनके भाजपा को वोट देने की गुंजाइश बेहद कम है। इसके लिए पुलिस व अर्द्धसैनिक बलों और प्रशासन के भीतर फ़ासीवादी घुसपैठ का इस्तेमाल किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश और उत्तर भारत के कई अन्य हिस्सों में उन निर्वाचन मण्डलों में वोटरों की लाइन में विशेष तौर पर पिछड़े व मुसलमान वोटरों के उन पहचान-पत्रों को जाँचा गया, जिसकी वोट डालने के लिए कोई आवश्यकता ही नहीं होती है और उनके न मिलने पर उन्हें वोट डालने की इजाज़त नहीं दी गयी। इसी प्रकार, अन्य कई शहरों से यह रिपोर्ट आयी कि कई स्थानों पर लोगों को वोट नहीं डालने दिया गया। यहाँ पर भी हम देख सकते हैं कि समूची राज्यसत्ता की मशीनरी पर अन्दर से क़ब्ज़े का भाजपा व संघ परिवार किस तरह से इस्तेमाल कर रहे हैं। *ऐसे में, क्या मौजूदा चुनावों को किसी भी रूप में पूँजीवादी जनवादी मानकों से भी निष्पक्ष, स्वतन्त्र या पारदर्शी माना जा सकता है? जो मानता है, वह या तो मोदीभक्त है या फिर उसे दिमाग के डॉक्टर की ज़रूरत है। पूरी प्रक्रिया ही भाजपा द्वारा हेरफेर और भ्रष्टाचार से भरी हुई है।*

इन चार तरक़ीबों के अलावा कुछ आम तरक़ीबें भी हैं जिनका भाजपा लम्बे समय से इस्तेमाल करती आ रही है। पिछले चुनावों में कुछ सीटों पर ऐसा हुआ कि भाजपा बेहद छोटे से मार्जिन से चुनाव हार या जीत रही थी। इनमें अभी पोस्टल बैलट की संख्या को नहीं जोड़ा गया था। बाद में पोस्टल बैलट की संख्या को जोड़ने पर अगर भाजपा छोटे मार्जिन से हार रही थी, तो चुनाव अधिकारियों ने कई पोस्टल बैलटों को रद्द कर दिया ताकि भाजपा जीत जाये। *धोलका विधायक सीट को भाजपा के मौजूदा यूनियन मन्त्री भूपेन्द्र सिंह चुडासामा ने इसी प्रकार जीता था। वहाँ 429 पोस्टल बैलट में से 327 रद्द कर दिये गये। अगर ऐसा न किया जाता तो कांग्रेस प्रत्याशी जीत गया होता। ग़ौरतलब है कि यह चुनाव अधिकारी था धवल जारी जो स्वयं चुडासामा के मातहत एक अधिकारी के रूप में काम करता था, जब चुडासामा राजस्व मन्त्री था।* पूँजीपति वर्ग के हितों की हिफ़ाज़त की बात आती है, तो सुप्रीम कोर्ट अपने से तमाम मसलों का संज्ञान लेता है और आदेश देता है। लेकिन इतने महत्वपूर्ण मसले पर कोई क़दम नहीं उठाया जाता। *इसके अलावा, विपक्षी दलों के प्रत्याशियों को ख़रीद लेना, ग़ायब करवा देना, उन्हें केन्द्रीय एजेंसियों के छापों, जेल आदि से डरा देना, उनके नामांकन रद्द करवा देना, विपक्षी दलों को तोड़कर उनके छद्म प्रतिद्वन्द्वी खड़े करवा देना और इस पर सैकड़ों करोड़ रुपये ख़र्च कर देना फ़ासीवादी रंगा-बिल्ला की जोड़ी के लिए बायें हाथ का खेल है।* देश के पूँजीपतियों से 12-14 हज़ार करोड़ रुपये का चन्दा इलेक्टोरल बॉण्ड के ज़रिये भाजपा को यूँ ही थोड़े ही दिया था! पूँजीवादी चुनावों में धनबल हमेशा ही प्रमुख भूमिका अदा करता है लेकिन भाजपाई फ़ासीवादियों के दौर में धनबल का ऐसा नंगनाच भारत की जनता ने कभी नहीं देखा था। जहाँ भाजपाई हारते हैं, वहाँ भी जीतने वाले दल या दलों के विधायकों, सांसदों, आदि को ख़रीद लेते हैं। मतलब, चुनाव कोई भी जीते, सरकार भाजपा की बनती है! इसीलिए तो भाजपाइयों का नारा है कि "आयेगा तो मोदी ही!" राजनीतिक नंगई और अश्लीलता की हद यह है कि इसे 'ऑपरेशन कमल' का नाम दिया जाता है और अब गोदी मीडिया के दलालों ने इसे एक स्वीकार्य बात बना दिया है!

ऐसे में देश की जनता को सोचने की ज़रूरत है कि लोकतन्त्र के फटे लबादे के नीचे वास्तव में बचा क्या है? समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व, क़ानून के समक्ष समानता, पारदर्शिता, जवाबदेही, आदि शब्दों को सुनते ही क्या अधिकांश लोगों की फिक् से हँसी नहीं छूट जाती है? लेकिन इस पर हँसना अपने आप पर हँसना होगा। इसलिए सबसे पहले पूँजीवादी लोकतन्त्र द्वारा जनता के संघर्षों के कारण दिये जाने वाले सबसे बुनियादी राजनीतिक जनवादी अधिकारों की रक्षा के लिए अगर हम सड़कों पर नहीं उतरेंगे, गोलबन्द नहीं होंगे, संगठित नहीं होंगे तो इसके भयंकर नतीजे हम और हमारी आने वाली पुश्तें भोगेंगी।

इस स्थिति को पैदा होने से रोकने के लिए **दूरगामी कार्यभार** यह है कि *हम एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का निर्माण और गठन करें, उसे पूरी तरह से जनता की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ताक़त पर खड़ा करें ताकि उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता हमेशा बरकरार रहे, जनता के सभी असली ठोस मुद्दों पर जनता के सभी वर्गों (जनता में पूँजीपति वर्ग और उसके चाकरों के हिस्से नहीं शामिल होते; परिभाषतः जनता वह होती है जो शोषण, उत्पीड़न और दमन के शिकार वर्ग होते हैं) को संगठित कर जुझारू जनान्दोलन खड़े करें चाहे वह बेरोज़गारी हो, महँगाई हो, भुखमरी हो, कुपोषण हो, बेघरी हो, सामाजिक असमानता हो; इन जुझारू जनान्दोलनों को क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में एक देशव्यापी क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप दिया जाय और मौजूद पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी राज्यसत्ता को ही उखाड़ फेंका जाये।*

लेकिन इसके लिए आज के दौर में जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को वक्त, मौक़ा और मोहलत चाहिए क्योंकि वे देश के पैमाने पर बिखरी हुई हैं; जनता को एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में गोलबन्द और संगठित करने के लिए आज यह ज़रूरी ***तात्कालिक कार्यभार*** बन जाता है कि भाजपा को मौजूदा चुनावों में हराया जाये और उसे एक तात्कालिक झटका दिया जाये। इसी से फ़ासीवादी संघ परिवार और भाजपा की निर्णायक पराजय नहीं होगी क्योंकि पिछले 7 दशकों में और विशेष तौर पर पिछले 4 दशकों में संघ परिवार ने समूची भारतीय पूँजीवादी राज्यसत्ता के भीतर लगातार निरन्तरता के साथ जारी घुसपैठ के ज़रिये एक *आन्तरिक क़ब्ज़ा* कर लिया है, अन्दर से उसे टेकओवर कर लिया है। *भाजपा और संघ परिवार जानते हैं कि इक्कीसवीं सदी में वे हिटलर और मुसोलिनी के समान आपवादिक क़ानून लाकर संसद, विधानसभा और पूँजीवादी चुनावों को ही भंग करके खुली तानाशाही क़ायम करेंगे तो उनका अन्त और ध्वंस भी उसी प्रकार होगा जैसा कि*

(पेज 12 पर जारी)

लोकसभा चुनाव में ईवीएम, केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) और न्यायपालिका से सहयोग के भरोसे मोदी सरकार

(पेज 11 से आगे)

बीसवीं सदी की फ़ासीवादी और धुर-दक्षिणपंथी तानाशाहियों का हुआ है। फ़ासीवादियों ने भी अपने पुरखों और उनके अनुभवों से सीखा है। इसलिए इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवादियों ने हमारे ही नहीं बल्कि अन्य देशों में यह रणनीति अपनायी है: *बुर्जुआ जनवाद के खोल को बनाये रखो; चुनाव करवाते रहो; लेकिन सारी पूँजीवादी जनवादी प्रक्रियाओं को संस्थाओं को पूँजीवादी राज्यसत्ता का भीतर से टेकओवर करके उन्हें इस कदर खोखला और निष्प्रभावी बना दो कि पूँजीवादी जनवाद महज़ खोल, महज़ उसका लबादा बाकी बचा रह जाये, लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु क्रमिक प्रक्रिया में मरती जाये।* निश्चित तौर पर, इस रणनीति के कुछ आन्तरिक अन्तरविरोध होंगे ही होंगे। मसलन, फ़ासीवादी भाजपा चुनाव हारकर कई बार सरकार से बाहर भी हो सकती है। लेकिन, जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, दीर्घकालिक मन्दी के दौर में किसी भी अन्य पूँजीवादी सरकार द्वारा दिखावटी कल्याणवाद के प्रयास भी असफल होंगे, पूँजीवादी व्यवस्था के संकट को बढ़ायेंगे, टुटपुँजिया व छोटे पूँजीपति वर्ग की असुरक्षा को बढ़ायेंगे और नतीजतन नये सिरे से और भी आक्रामक फ़ासीवादी उभार और उनके वापस सरकार बनाने की परिणति तक पहुँचेंगे। पूँजीवाद के गहराते संकट और समाज व राजनीति में संघ परिवार और भाजपा के फ़ासीवाद की आन्तरिक पकड़ के नतीजे के तौर पर 1998 से यही तो होता रहा है। इसलिए यह समझना ज़रूरी है कि अगर मोदी चुनाव हारता है तो भी यह फ़ासीवाद की फ़ैसलाकुन हार नहीं होगी। *फ़ासीवाद की निर्णायक पराजय इक्कीसवीं सदी में नयी समाजवादी क्रान्ति के साथ जुड़ गयी है।* वह युग बीत गया जब कोई पॉप्युलर फ्रण्ट के आधार पर बनी जनवादी बुर्जुआ सरकार, कोई अन्य पूँजीवादी सरकार फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त दे पाती। यहाँ तक कि बीसवीं सदी में भी ऐसा कोई युग वास्तव में था, यह बहस का मसला है। लेकिन आज तो ऐसी बात भी करना मूर्खतापूर्ण है। आज पूँजीपति वर्ग ही इस बात की इजाज़त नहीं देगा कि कोई गैर-फ़ासीवादी पूँजीवादी दल की सरकार फ़ासीवादी संघ परिवार और भाजपा पर प्रतिबन्ध लगाये (जिसके पर्याप्त कारण पूँजीवादी मानकों से भी मौजूद हैं!) या उनकी लगाम कसे। यही तो वजह थी कि बजरंग दल पर प्रतिबन्ध लगाने का वायदा करने के बावजूद कर्नाटक में सरकार बनाने के बाद कांग्रेस सीधे-सीधे इस वायदे से मुकर गयी।

फ़ासीवादी चुनौती को शिकस्त देने के लिए उपरोक्त दूरगामी कार्यक्रम और तात्कालिक कार्यक्रम के मद्देनज़र हमें एक भी क्षण गँवाए बिना तैयारियाँ शुरू करनी होंगी। चुनावों तक हमारा सबसे अहम कार्यभार है: *भाजपा को हराना।* जहाँ पर क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार हों, वहाँ उन्हें वोट देकर स्वतन्त्र सर्वहारा पक्ष का निर्माण करते हुए यह कार्य करना और जहाँ मेहनतकश वर्ग का ऐसा प्रत्याशी नहीं है, वहाँ पर भाजपा की हार को सुनिश्चित करने के लिए जिस रूप में ज़रूरी हो उस रूप में वोट देना व्यापक *मेहनतकश जनता के लिए ज़रूरी तात्कालिक कार्यभार* है। इस कार्यभार का यह दूसरा नारा *तात्कालिक विशिष्ट रणकौशलात्मक नकारात्मक नारा* है, सकारात्मक नारा नहीं। सर्वहारा वर्ग फ़ासीवाद को हराने के लिए कभी सकारात्मक तौर पर किसी पूँजीवादी पार्टी को वोट देकर राजनीतिक तौर पर उसका पिछलग्गू नहीं बन सकता है। यह फ़ासीवाद को हराने के नाम पर अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को खोना है। सच है कि यह नकारात्मक नारा एक मजबूरी का तात्कालिक विकल्प है। लेकिन क्रान्तिकारी यथार्थवाद के आधार पर, जब पूरे देश में कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी नहीं मौजूद है, तो सर्वहारा वर्ग एक ऐसे तात्कालिक विशिष्ट रणकौलशलात्मक नकारात्मक नारे पर ही अमल करने का आह्वान कर सकता है, ठीक इसलिए कि देश में ऐसा देशव्यापी सर्वहारा विकल्प खड़ा करने के लिए जो वक़्त, मौक़ा और मोहलत चाहिए उसके लिए तात्कालिक तौर पर भाजपा को सरकार से बाहर करना और फ़ासीवाद के विरुद्ध जुझारू जनान्दोलन खड़ा करने की तैयारियाँ शुरू करना एक अहम क़दम बन जाता है।

पूँजीवादी संचय का आम नियम

(पेज 19 से आगे)

जारी पूँजी संचय के कारण होने वाले पूँजी के सान्द्रण और संकेन्द्रण के कारण बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उत्पादन का समाजीकरण एक ऐसी मंज़िल में पहुँचता जाता है कि किसी भी पूँजीपति के लिए नया निवेश करना या अपने पुराने उपक्रमों के ख़र्च होने वाले अचल पूँजी के तत्वों की भरपाई कर पाना, महज़ अपनी पूँजी के बूते सम्भव नहीं रह जाता। इसके साथ ही बैंकों की भूमिका में एक परिवर्तन आता है। वे एक भारी-भरकम ऋण तन्त्र का निर्माण करते हैं। बैंक समाज की सतह पर बिखरी पूँजियों (जो तात्कालिक तौर पर उत्पादक निवेश में नहीं लगी हैं और मुद्रा-पूँजी के भण्डारों के रूप में जमा हो रही हैं) और साथ ही ग़ैर-पूँजीपति वर्गों (मज़दूर वर्ग, मध्यम वर्ग, आम मेहनतक़श किसान, आदि) की छोटी-बड़ी बचतों को एक जगह केन्द्रीकृत करते हैं। इसके साथ, उनके पास भारी मुद्रा पूँजी आ जाती है जिसे वे पूँजीपतियों को ऋण के रूप में दे सकते हैं। जल्द ही उनकी भूमिका पूँजी संचय में सहायक शक्ति के बजाय पूँजी संचय के प्रमुख संचालक की बनने लगती है। यह वास्तव में सतत् जारी पूँजी संचय से होने वाले पूँजी के सान्द्रण व संकेन्द्रण और नतीजतन उत्पादन के बढ़ते समाजीकरण का ही परिणाम होता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "पूँजियों के केन्द्रीकरण, या पूँजी द्वारा पूँजी के आकर्षण, के नियमों को हम यहाँ विस्तारित नहीं कर सकते। कुछ संक्षिप्त तथ्यात्मक संकेत यहाँ पर्याप्त होंगे। प्रतिस्पर्द्धा का युद्ध मालों को सस्ता करते हुए लड़ा जाता है। मालों का सस्तापन, अन्य सभी स्थितियों के समान रहने पर, श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करता है, और स्वयं श्रम की उत्पादकता उत्पादन के पैमाने पर निर्भर करती है। इसलिए बड़ी पूँजियाँ छोटी पूँजियों को हरा देती हैं। यह भी याद रखा जाना चाहिए कि पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के साथ सामान्य स्थितियों में व्यवसाय को चलाते रखने के लिए आवश्यक वैयक्तिक पूँजी की न्यूनतम मात्रा भी बढ़ती है। इसलिए छोटी पूँजियाँ उत्पादन की उन शाखाओं में इकट्ठी होती जाती हैं, जिस पर बड़े पैमाने के उद्योग ने अभी तक केवल कहीं-कहीं ही नियन्त्रण स्थापित किया है या फिर अपूर्ण रूप से नियन्त्रण स्थापित किया है। यहाँ प्रतिस्पर्द्धा प्रतिस्पर्द्धी पूँजियों की संख्या के साथ प्रत्यक्ष समानुपात में और उनके आकार के साथ व्युत्क्रमानुपात में जारी रहती है। इसका अन्त हमेशा कई छोटे पूँजीपतियों की तबाही में होता है, जिनकी पूँजियाँ आंशिक रूप से विजेताओं के हाथ में चली जाती हैं और आंशिक तौर पर पूर्णत: नष्ट हो जाती हैं। इसके अलावा, पूँजीवादी उत्पादन के विकास के साथ एक बिल्कुल नयी शक्ति अस्तित्व में आती है: क्रेडिट तन्त्र। शुरुआती मंज़िलों में, यह तन्त्र संचय के विनम्र सहायक के रूप में चोरी-चोरी घुसता है, व्यक्तिगत या सम्बद्ध पूँजीपतियों के हाथों में अदृश्य तारों के ज़रिये मुद्रा के उन संसाधनों को रखता है, जो समाज की सतह पर बड़ी या छोटी मात्राओं में बिखरे हुए हैं; लेकिन जल्दी ही यह प्रतिस्पर्द्धा के युद्ध में एक नया और भयंकर हथियार बन जाता है और अन्तत: पूँजियों के संकेन्द्रण की एक विराट सामाजिक प्रणाली में तब्दील हो जाता है।" (*वही*, पृ. 777-78)

पूँजी का संकेन्द्रण उन उपक्रमों के विकास को भी सम्भव बना देता है, जिसके लिए अगर केवल पूँजी के सान्द्रण के पर्याप्त रूप से विकसित होने का इन्तज़ार किया जाता, तो उसमें वर्षों लग जाते हैं। मिसाल के तौर पर, मार्क्स बताते हैं कि रेलवे का विकास पूँजी के संकेन्द्रण के नतीजे के तौर पर पैदा हुए विशाल ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनियों व ट्रस्टों के ज़रिये ही तेज़ी से सम्भव हो पाया। यदि इसके लिए पूँजी के सान्द्रण के विकसित होने की प्रतीक्षा की जाती तो इसमें दशकों लग जाते। लेकिन पूँजी के केन्द्रीकरण ने इसे कुछ महीनों के भीतर ही सम्भव बना दिया। इस प्रकार, पूँजी का संकेन्द्रण उत्पादक शक्तियों के विशालकाय पैमाने पर विकास को सम्भव बनाता है, भले ही वह अपने आप में कुल सामाजिक पूँजी की मात्रा में बढ़ोत्तरी न करता हो। आज भी तमाम दैत्याकार उपक्रमों के ज़रिये उत्पादन के अभूतपूर्व स्तर पर समाजीकरण और श्रम की सामाजिक शक्ति को गुणात्मक रूप से नये स्तर पर निर्बन्ध करना पूँजी के केन्द्रीकरण के ज़रिये ही सम्भव होता है। पूँजी की विशाल मात्राओं के पहले से बेहद कम केन्द्रों पर केन्द्रित होने के परिणाम के रूप में पूँजी दिन-दूनी रात चौगुनी गति से अपने आपको बढ़ाती जाती है और सामाजिक रूप में पूँजी संचय का एक प्रमुख कारक बन जाती है। मार्क्स बताते हैं कि इसी के ज़रिये नये औद्योगिक आविष्कार और नवोन्मेष भी पहले से बड़े पैमाने पर और ज़्यादा तेज़ गति से होते हैं। जैसे-जैसे पुरानी पूँजियाँ अपने आपको भौतिक रूप से पुनर्नवीकृत करती हैं, यानी पुराने उत्पादन के साधनों के ख़र्च होने के साथ नयी तकनोलॉजी पर आधारित नये उत्पादन के साधनों को उत्पादन में लगाती हैं, वैसे-वैसे पूँजी संचय बढ़ता है और साथ ही श्रमशक्ति की माँग में और भी ज़्यादा कमी आती है। जैसा कि हमने ऊपर बताया, पूँजी का संकेन्द्रण पलटकर पूँजी के सान्द्रण को बल प्रदान करता है। *यह उत्पादन के समाजीकरण को तो बढ़ाता ही है, साथ ही यह पूँजी के आवयविक संघटन को भी पहले से तेज़ गति से बढ़ाता है। नतीजतन, पूँजी द्वारा श्रमशक्ति के आकर्षण में सापेक्षिक कमी आती है।* मन्दी और स्थिरता के दौर में यह श्रमशक्ति की माँग को निरपेक्ष रूप से भी कम कर सकता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "संचय की सामान्य प्रक्रिया में बनने वाली नयी पूँजियाँ सबसे मुख्य तौर पर नये आविष्कारों और खोजों के इस्तेमाल का, और आम तौर पर औद्योगिक उन्नतियों का वाहक बनती हैं। लेकिन समय के साथ पुरानी पूँजी स्वयं उस बिन्दु पर पहुँच जाती है जहाँ उसे अपने आपको हर मायने में पुनर्नवीकृत करना होता है, एक ऐसा समय जब उसे अपने केंचुली को त्यागकर अन्य पूँजियों के समान पूर्णता-प्राप्त तकनीकी रूप में पुनर्जन्म लेना होता है, एक ऐसे तकनीकी रूप में जिसमें श्रम की पहले से कम मात्रा मशीनरी और कच्चे माल की पहले से ज़्यादा बड़ी मात्रा को गतिमान करने के लिए पर्याप्त होती है। इसके नतीजे के तौर पर श्रम की माँग में जो निरपेक्ष कमी आती है वह उतनी ही बड़ी होती है, जितना बड़े स्तर पर पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रही पूँजियाँ संकेन्द्रण की ओर जारी गति के कारण एक साथ आती हैं।
>
> "इस प्रकार, एक ओर निरन्तर जारी संचय की प्रक्रिया में बनने वाली नयी पूँजियाँ अपने आकार की तुलना में कम से कम मज़दूरों को आकर्षित करती हैं। वहीं दूसरी ओर, पुरानी पूँजी नियमित अन्तरालों पर एक नये संघटन के साथ पुनरुत्पादित होती हैं और पहले काम पर रखे गये मज़दूरों को अधिक से अधिक विकर्षित करती हैं।" (*वही*, पृ. 780-81)

संक्षेप में, समान दर से पूँजी संचय पूँजीवादी व्यवस्था का आम नियम नहीं है। आम तौर पर, पूँजी संचय लगातार पहले से विस्तारित दर और पैमाने पर होता है। इसका अर्थ यह है कि पूँजी का आवयविक संघटन लगातार बढ़ता है, जिसके कारणों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। यही पूँजी के सान्द्रण और संकेन्द्रण को बढ़ाता है, जो पलटकर पूँजी संचय को भी अभूतपूर्व रूप से बढ़ाता है।

इसका नतीजा होता है एक सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी या औद्योगिक रिज़र्व सेना का लगातार पहले से बड़े पैमाने पर निर्माण। आगे मार्क्स इसी पर विस्तार से चर्चा करते हैं, जो आज के समय में भी एकदम प्रासंगिक है और विशेष तौर पर अनौपचारिकीकरण यानी ठेकाकरण, दिहाड़ीकरण और कैजुअलीकरण को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

(अगले अंक में अध्याय-16 जारी)

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(नौवीं किश्त)

● शिवानी

सबसे पहले तो 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों से माफ़ी चाहेंगे कि इस श्रृंखला को जिस नियमितता के साथ चलाये जाने की आवश्यकता थी, उसका अभाव रहा है। इसके लिए हम पाठकों के समक्ष आत्मालोचना प्रस्तुत करते हैं। भविष्य में पूरी कोशिश रहेगी कि यह श्रृंखला नियमित तौर पर चले। यह लेखमाला इस मक़सद के साथ शुरू की गयी है कि मज़दूर आन्दोलन में मौजूद उन प्रवृत्तियों की शिनाख़्त की जाये जो आन्दोलन और मज़दूर वर्ग के तात्कालिक आर्थिक-राजनीतिक और दूरगामी राजनीतिक हितों के लिए बेहद ख़तरनाक हैं। यह वे प्रवृत्तियाँ हैं जो कहने के लिए बात तो मज़दूर वर्ग की करती हैं लेकिन सचेतन या अचेतन तौर पर, सेवा मालिकों की जमात की करती हैं। चूँकि ये सभी बातें मज़दूर वर्ग के "हितों" और उसकी "राजनीति" को आगे बढ़ाने के नाम पर की जाती हैं, इसलिए मज़दूर साथियों और संगठनकर्ताओं को इन ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्तियों के बारे में जानना चाहिए, उनसे सचेत हो जाना चाहिए और उनके ख़िलाफ़ हर मोर्चे पर समझौताविहीन विचारधारात्मक व व्यावहारिक संघर्ष चलाना चाहिए।

हमने पिछली आठ किश्तों में मज़दूर आन्दोलन में मौजूद **अर्थवाद की प्रवृत्ति** पर अपनी बात रखी थी जो चर्चा अभी भी जारी है। अर्थवाद पर केन्द्रित अब तक की चर्चा में हमने बताया कि किस प्रकार अर्थवाद मज़दूर आन्दोलन में एक ख़तरनाक अवसरवादी प्रवृत्ति है। अर्थवाद मज़दूर आन्दोलन के अन्तिम लक्ष्य को वेतन-वृद्धि, कार्य-स्थितियों में सुधार, बोनस-ग्रैचुटी आदि के लिए आर्थिक संघर्ष तक सीमित कर देता है। अर्थवाद आर्थिक संघर्ष और राजनीतिक संघर्ष के बीच में दीवार खड़ी करके मज़दूर वर्ग को केवल आर्थिक संघर्ष के गोल चक्कर में घुमाते रहने का पक्षधर होता है और इसके लिए उसकी दलील यह होती है कि मज़दूरों की राजनीतिक मसलों में कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं होती है और मज़दूर केवल वेतन-भत्तों की लड़ाई में ही रुचि रखते हैं। अर्थवाद के रूसी संस्करण की बात करते हुए हमने देखा था कि रूस में अर्थवादी वहाँ की विशिष्ट स्थितियों में राजनीतिक संघर्ष को चलाने की ज़िम्मेदारी उदार बुर्जुआ वर्ग पर डाल देते थे और मज़दूरों के लिए केवल फ़ैक्ट्री-आधारित आर्थिक संघर्षों को चलाने का काम आरक्षित रखते थे। दूसरे शब्दों में कहें तो राजनीतिक मामलों में अर्थवादी मज़दूर वर्ग को पूँजीपति वर्ग का पिछलग्गू बनने का उपदेश देते थे और सर्वहारा वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति और पक्ष की अनदेखी करते थे।

दरअसल, **अर्थवाद हिरावल पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को नकारता है** और मानता है कि पार्टी का काम केवल आन्दोलन की स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया को देखते रहना है और घटनाओं को मात्र दर्ज करते रहना है। हमने अपनी चर्चा में यह भी देखा कि स्वतःस्फूर्तता की पूजा करते हुए **अर्थवादी क्रान्तिकारी सिद्धान्त और सचेतना के पहलू को कोई विशेष महत्व नहीं देते हैं** और मानते हैं कि समाजवादी विचारधारा स्वतःस्फूर्त रूप से मज़दूर आन्दोलन के भीतर से पैदा होती है और आर्थिक संघर्ष अपने आप एक ख़ास मंज़िल पर राजनीतिक संघर्ष में तब्दील हो जाते हैं। इसके विपरीत मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी दर्शन और विज्ञान, यानी कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद बताता है कि समाजवादी विचारधारा स्वतःस्फूर्त आर्थिक व ट्रेड यूनियन संघर्षों के ज़रिये अपने आप आन्दोलन में पैदा नहीं होती है और न ही अपने आप मज़दूर आन्दोलन में उसका प्राधिकार स्थापित हो जाता है। सर्वहारा विचारधारा का प्रवेश आन्दोलन में 'बाहर से' होता है यानी उन क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों (जिन्हें लेनिन ने **'क्या करें?'** में क्रान्तिकारी जीवाणुओं (revolutionary bacilli) की संज्ञा दी थी) के ज़रिये होता है जिन्होंने राजनीतिक तौर पर सर्वहारा वर्ग का पक्ष चुना होता है और जो उसके संघर्षों के साथ अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं। और ठीक इसीलिए वे सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्षों के ऐतिहासिक अनुभवों का समाहार कर पाते हैं जिसके आधार पर सर्वहारा विचारधारा निःसृत होती है। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई मज़दूर यह भूमिका नहीं निभा सकता। इसका अर्थ केवल इतना है कि जब कोई मज़दूर भी इस भूमिका को निभाता है तब वह राजनीतिक वर्ग के तौर पर मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व एक क्रान्तिकारी विचारक और बुद्धिजीवी के रूप में करता है, न कि मज़दूर वर्ग में पैदा होने के लिहाज़ से सामाजिक वर्ग के तौर पर वह यह भूमिका अदा करता है। इस पूरी चर्चा को तफ़सील से जानने के लिए पाठक अब तक प्रकाशित हुई किश्तों को पढ़ सकते हैं।

यानी कुल मिलाकर कहें तो **अर्थवाद** की ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्ति की **आम चारित्रिक विशिष्टताएँ** हैं: सचेतना के तत्व और क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बरक्स स्वतःस्फूर्तता की पूजा करना, मज़दूर आन्दोलन में कम्युनिस्ट राजनीति की जगह ट्रेड यूनियनवादी राजनीति की ओर भटकाव, राजनीतिक कार्य के दायरे को संकुचित व संकीर्ण बनाना, क्रान्तिकारी प्रचार और उद्वेलन व सर्वांगीण राजनीतिक भण्डाफोड़ की कार्रवाई के महत्व को कम करके आँकना, सांगठनिक प्रश्नों पर आदिमता और नौसिखुएपन की वक़ालत करना, पार्टी संगठन और जन संगठन के बीच के फ़र्क को गड्डमड्ड करना इत्यादि। इस पूरी चर्चा में हमने लेनिन के कई उद्धरण भी प्रस्तुत किये। हमने विशेष तौर पर लेनिन की इस प्रश्न पर सबसे महत्वपूर्ण रचना **'क्या करें?'** से कई ज़रूरी हिस्सों को उद्धृत किया था जो आज भी सर्वहारा दृष्टिकोण से अर्थवाद की सबसे तीखी और प्रासंगिक आलोचना है।

अब आगे बढ़ते हैं। पिछली किश्त में हमारी चर्चा का मुख्य विषय **जन संगठन और पार्टी संगठन के बीच का लेनिनवादी फ़र्क** था। लेनिन ने इन दोनों के बीच के अन्तर को सुस्पष्ट तरीक़े से रखा है जैसा कि हमने पिछली चर्चा में देखा और साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार अर्थवादी इस फ़र्क को गड्डमड्ड करने का प्रयास करते हैं। लेनिन अर्थवाद की सांगठनिक प्रश्न पर आलोचना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि हमारा काम क्रान्तिकारियों को नौसिखुओं के धरातल पर उतार लाने की पैरवी करना नहीं, बल्कि नौसिखुओं को ऊपर उठाकर क्रान्तिकारियों के धरातल पर पहुँचा देना है। लेनिन के अनुसार ट्रेड यूनियन जैसे जन संगठन के समान पार्टी हर हड़ताली मज़दूर को सदस्यता नहीं देती है बल्कि केवल उन मज़दूरों को सदस्यता देती है जो कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यानी कि सर्वहारा विश्वदृष्टिकोण अपनाते हैं, मार्क्सवादी विज्ञान को अपनाते हैं और समाजवादी कार्यक्रम को अपनाते हैं। साथ ही, पार्टी सदस्यता केवल उन्हीं को दी जा सकती है जो कि किसी भी मोर्चे पर संगठन के लौह अनुशासन में काम करने को प्रतिबद्ध होते हैं।

इसके साथ ही, लेनिन 'क्या करें?' में **पेशेवर क्रान्तिकारी की अवधारणा** को भी पेश करते हैं जो कि लेनिनवादी पार्टी उसूल के सबसे बुनियादी तत्वों में से एक है। पार्टी में पेशेवर क्रान्तिकारी की अवधारणा भी कोई हवा में पैदा हुआ अमूर्त सिद्धान्त नहीं है बल्कि इसके पीछे निश्चित ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कारण हैं। यह लेनिनवादी पार्टी उसूल ही है जो बताता है कि बुर्जुआ राज्यसत्ता को चलाने का काम पूँजी के अहलकार करते हैं। यह वे पेशेवर लोग होते हैं जिनका काम ही राज्यसत्ता के अलग-अलग निकायों को सुचारू रूप से संचालित करने का होता है। यही नहीं, पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम बुर्जुआ पार्टियों में भी ऐसे लोग मौजूद होते हैं जिनका काम ही बुर्जुआ राजनीति में रहकर पार्टी और सरकार बनाने के ज़रिये पूँजीपति वर्ग की सेवा करना होता है। पेशेवरों द्वारा संचालित ऐसे राज्यसत्ता के ढाँचे का विध्वंस मज़दूरों-मेहनतकशों की ऐसी हिरावल पार्टी के नेतृत्व में ही सम्भव है जिसका मेरुदण्ड पेशेवर क्रान्तिकारियों का ढाँचा हो यानी ऐसे लोग जिन्होंने सर्वहारा विचारधारा को आत्मसात कर सर्वहारा संघर्षों से एकरूप होकर पेशे के तौर पर सर्वहारा राजनीति को अपनाया हो और जो हर वक़्त, हर जगह और हर स्थिति में क्रान्ति और पार्टी की ज़रूरतों को सर्वोपरि रखते हों और जिनका जीवन पूरी तरह से क्रान्ति को समर्पित हो। यही कारण है कि लेनिन **'क्या करें?'** में इस अवधारणा पर इतना ज़ोर देते हैं जो अवधारणा आगे चलकर बोल्शेविक पार्टी के सिद्धान्त का अभिन्न अंग बन गयी और आज भी हिरावल पार्टी के सिद्धान्त का अभिन्न अंग है। हालाँकि संशोधनवादियों से लेकर अराजकतावादी संघाधिपत्यवादियों तक ने इस लेनिनवादी अवधारणा पर हमला बोला है जिसका मुँहतोड़ जवाब कम्युनिस्टों द्वारा हर बार दिया गया है।

वास्तव में लेनिन के निशाने पर यहाँ **सांगठनिक प्रश्न पर भी अर्थवादियों की स्वतःस्फूर्तता की पूजा करने की प्रवृत्ति** है। साथ ही, अर्थवाद सम्पूर्ण क्रान्तिकारी कार्य का दायरा इतना संकुचित और संकीर्ण बना देता है कि क्रान्तिकारियों के अलग संगठन की ज़रूरत ही वस्तुगत तौर पर ख़ारिज हो जाती है। रूसी अर्थवादी इस संकीर्णता को उचित और वैध ठहराने के लिए इसे एक विशेष "सिद्धान्त" के स्तर पर पहुँचाने की कोशिश कर रहे थे। वहीं लेनिन के मुताबिक़ क्रान्तिकारी कार्यों का दायरा अत्यधिक व्यापक होता है जिसकी पूर्वशर्त **क्रान्तिकारियों के एक अखिल-रूसी संगठन का निर्माण है यानी पार्टी निर्माण** का कार्य। यह अपने आप में सचेतन व सुव्यवस्थित प्रयासों, तैयारी और योजना की माँग करता है लेकिन अर्थवादी इस मामले में भी समस्त कार्रवाइयों को स्वतःस्फूर्तता के हवाले छोड़ देते हैं और इसलिए पार्टी के उन्नत सांगठनिक रूप की जगह ट्रेड यूनियन जैसे आदिम सांगठनिक रूपों की पैरवी करने लगते हैं। **पार्टी सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक और विचारधारात्मक रूप से सबसे उन्नत तत्वों का दस्ता और उसका क्रान्तिकारी केन्द्र** होती है और समस्त जनसमुदायों का प्रतिनिधित्व करती है। अर्थवाद दरअसल सभी राजनीतिक और सांगठनिक कार्यभारों को रोज़मर्रा के तात्कालिक आर्थिक संघर्षों के स्तर पर उतार लाता है और इसलिए हिरावल पार्टी की अवधारणा को वस्तुगत तौर पर नकार देता है क्योंकि इन तात्कालिक आर्थिक संघर्षों को संचालित करने के लिए मज़दूरों की ट्रेड यूनियनें ही काफ़ी होती हैं।

हमने पिछली बार इस बात की भी चर्चा की थी कि पेशेवर क्रान्तिकारियों से लैस गुप्त ढाँचे वाली हिरावल पार्टी का अर्थ यह नहीं है कि आन्दोलन के सभी कामों का केन्द्रीयकरण इस छोटे से समूह के हाथों में हो जायेगा। उल्टे लेनिन बताते हैं कि इस ढाँचे के कारण ही जनसमुदायों की पहलक़दमी और सक्रिय भागीदारी निर्बन्ध हो सकती है यानी जन संगठनों के काम भी सुचारू और व्यवस्थित तरीक़े से इसके ज़रिये ही चल सकते हैं। इनके अन्तर्गत मज़दूरों की ट्रेड यूनियनें, मज़दूरों के आत्म-शिक्षा मण्डल, ग़ैर-क़ानूनी साहित्य पढ़ने वाले मण्डल, जनसमुदायों के अन्य तमाम हिस्सों में काम करने वाले समाजवादी मण्डल और जनवादी मण्डल आदि का काम आता है। लेनिन कहते हैं:

> "ऐसे मण्डलों, ट्रेड यूनियनों और संगठनों को हर जगह और **बड़ी से बड़ी संख्या में** होना चाहिए और उन्हें तरह-तरह के काम करने चाहिए। **पर इन संगठनों और *क्रान्तिकारियों* के संगठन (यानी पार्टी - *लेखिका*) को एक चीज़ समझना, उनके बीच जो विभाजक रेखा है उसको मिटा देना और पहले से ही मौजूद इस बात की धुंधली मान्यता को कि जन आन्दोलन में काम करने के लिए कुछ ऐसे लोगों का होना ज़रूरी है जो केवल सामाजिक-जनवादी (कम्युनिस्ट) कार्य करते हों, और कि ऐसे लोगों को बड़े धैर्य और अध्यवसाय के साथ अपने को पेशेवर क्रान्तिकारी *बनने की प्रशिक्षा* देना चाहिए – और भी धुंधला बना देना बेतुकी और हानिकर बात है।" *(ज़ोर हमारा)***

लेनिन एक बार फिर अर्थवादियों की निम्न निर्मम शब्दों में आलोचना प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने अपने नौसिखुएपन से क्रान्तिकारियों और क्रान्तिकारी कार्य की प्रतिष्ठा को नीचे गिराया है:

> "जो व्यक्ति सिद्धान्त के मामले में ढीला-ढाला और ढुलमुल है, जिसका दृष्टिकोण संकुचित है, जो अपनी काहिली को छिपाने के लिए जनता की स्वतःस्फूर्तता की दुहाई देता है, *जो जनता के प्रवक्ता के तौर पर कम बल्कि ट्रेड यूनियन सचिव के तौर पर अधिक काम करता है*, जो ऐसी कोई व्यापक तथा साहसी योजना

(पेज 16 पर जारी)

चुनाव आते ही मोदी के साम्प्रदायिक बयानों, झूठों और ग़लतबयानियों की अन्धाधुन्ध बमबारी के मायने

(पेज 1 से आगे)

बोलने के लिए विश्वविख्यात! इसलिए वे अपने काम में ज़ोर-शोर से लगे हुए हैं।

झूठ की बुनियाद पर टिके प्रधानमन्त्री के साम्प्रदायिक भाषणों के कुछ उदाहरण

पिछले कुछ दिनों में मोदी के भाषणों पर नज़र डालें तो पता चलता है कि ऐसा कोई दिन नहीं होगा जब मोदी ने साम्प्रदायिक भाषण न दिया हो। पहले चरण का चुनाव समाप्त होने के बाद से प्रधानमन्त्री के भाषणों में जिस तरीक़े से मुस्लिम विरोधी भाषा का इस्तेमाल किया गया है वह ख़तरनाक है। राजस्थान के टोंक में चुनावी रैली को सम्बोधित करते हुए उन्होंने आरोप लगाया कि कांग्रेस पार्टी दलितों और पिछड़ों का आरक्षण छीनकर मुसलमानों को देना चाहती है। प्रधानमन्त्री मोदी ने मुसलमानों पर टिप्पणी करते हुए उन्हें 'घुसपैठिये' और 'ज़्यादा बच्चे पैदा करने वाला' कहा।

हालाँकि, आरक्षण पर फ़ासिस्ट भाजपा के दोहरे चरित्र को भी समझना ज़रूरी है। जिस आरक्षण का डर दिखाकर प्रधानमन्त्री मोदी लोगों के बीच आग लगाने की कोशिश कर रहे हैं उसी आरक्षण को पिछले 10 सालों से उनकी सरकार ख़त्म कर रही है। कॉलेज-यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले आर्थिक रूप से पिछड़े छात्रों की स्कॉलरशिप को ख़त्म कर दिया गया है। यह दीगर बात है कि आरक्षण से ही ग़रीब दलितों व पिछड़ों की किसी समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। लेकिन मोदी का झूठ यहाँ साफ़ तौर पर पकड़ा जा सकता है।

हमारे सामने ज्वलन्त सवाल तो यह है कि पिछले 10 सालों में फ़ासीवादी मोदी सरकार ने कई सार्वजनिक उपक्रमों को निजी हाथों में बेच दिया है। निजीकरण का जो नंगा खेल मोदी सरकार खेल रही है उसमें आरक्षण के होने या न होने से कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। जब सारे सार्वजनिक उपक्रमों को ही बेच दिया जायेगा, सभी नौकरियों को ख़त्म कर दिया जायेगा जैसा कि फ़ासीवादी मोदी सरकार कर रही है, तो आरक्षण के झुनझुने से जो प्रतीकात्मक मिलने का भ्रम पैदा हो रहा था, वह भी नहीं होने वाला।

अपने भाषण में प्रधानमन्त्री मोदी ने आरोप लगाया है कि कांग्रेस का मेनिफ़ेस्टो मुस्लिम लीग से प्रभावित है। और इस तरह भारत के लोकसभा चुनाव में मुस्लिम लीग की औपचारिक एण्ट्री हो गयी! **अब जब चुनाव में मुस्लिम लीग की एण्ट्री हो ही गयी है तो लगे हाथ "प्रधानसेवक" को चाहिए कि वे देश की जनता को यह भी बता दें कि आख़िर ऐसी क्या मजबूरी थी कि हिन्दू महासभा को मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सरकार बनानी पड़ी?** यह हिन्दू महासभा वही संगठन है जिसका अध्यक्ष माफ़ीवीर सावरकर रह चुका है और हमारे "प्रधानसेवक" का सावरकर-प्रेम किसी से छिपा नहीं है। सावरकर की ही नफ़रती और ज़हरीली राजनीति को आगे बढ़ाने का काम बड़ी ही शिद्दत के साथ भाजपा और प्रधानमन्त्री मोदी कर रहे हैं। **भाजपा के विचारक श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने, जो उस समय हिन्दू महासभा से जुड़े हुए थे, 1940 में मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सिन्ध और उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में गठबन्धन की सरकार बनायी थी।**

यह कोई पहला उदाहरण नहीं है जब फ़िरकापरस्त साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों ने ऐसी पार्टियों के साथ सरकार बनायी हो जिसे मोदी जी और भाजपा चीख-चीख कर आतंकवादी और देशद्रोही कहते हैं। **मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद भाजपा ने महबूबा मुफ़्ती की पार्टी पीडीपी के साथ, जिसे कभी बीजेपी और प्रधानमन्त्री मोदी आतंकवादी और देशद्रोही संगठन कहते थे, 2015 में जम्मू कश्मीर में गठबन्धन में सरकार बनायी और 40 महीने तक सरकार चलायी।** इससे दमित कश्मीरी क़ौम के सामने महबूबा मुफ़्ती जैसे दलालों का चरित्र भी साफ़ होना चाहिए। वे कभी भी कश्मीरी क़ौम के राष्ट्रीय दमन के विरुद्ध एक जुझारू जनसंघर्ष नहीं खड़ा कर सकते हैं। यह दिखाता है कि इस फ़ासीवादी मोदी सरकार का कोई भरोसा नहीं है। यह लोगों को बाँटने के लिए हिन्दू-मुसलमान, मुस्लिम लीग, श्मसान-कब्रिस्तान, मन्दिर-मस्जिद की बात करते हैं लेकिन जब भी मौक़ा मिलता है तो अन्य धर्मों के फ़िरकापरस्तों और कट्टरपंथियों के साथ सत्ता की मलाई खाने से परहेज़ नहीं करते। यह सत्ता में बने रहने के लिए येण-केण-प्रकारेण तरीक़े से किसी के साथ भी गठबन्धन बना सकते हैं।

दिन बीतने के साथ ही "लव जिहाद", "लैण्ड जिहाद", "नौकरी जजिहाद" के बाद अब इस चुनाव में "वोट जिहाद" का भी राग प्रधानमन्त्री द्वारा छेड़ दिया गया है। मध्य प्रदेश के अपने भाषण में प्रधानमन्त्री मोदी ने एक ख़ास धर्म को निशाना बनाते हुए "वोट जिहाद" बनाम "राम राज्य" की बात कही। **प्रधानमन्त्री के इन भाषणों में दो चीज़ें महत्वपूर्ण है। पहला,** झूठ बोलने की आदत से मजबूर हमारे "प्रधानसेवक" ने पूर्व प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह के जिस 18 साल पुराने बयान के हवाले से यह बात कही, उस पूरे बयान को सन्दर्भ से काटकर तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया। **दूसरा**, इस पूरे बयान को भाजपा बनाम कांग्रेस के सन्दर्भ में देखने के बजाए यह समझने की ज़रूरत है कि मोदी और भाजपाइयों के लिए मुसलमानों को एक नकली दुश्मन बनाकर पेश करने और धार्मिक ध्रुवीकरण करना एक अनिवार्यता है। फ़ासीवाद को हमेशा किसी अल्पसंख्यक समुदाय में एक नकली दुश्मन की ज़रूरत होती है। उसके बिना व्यापक जनसमुदायों के गुस्से को असली दुश्मन, यानी पूँजीवाद, की ओर से मोड़कर भटकाया नहीं जा सकता है। जैसे-जैसे चुनाव नज़दीक आ रहा है और कोई जुमला नहीं चल रहा है, वैसे-वैसे प्रधानमन्त्री की एक ख़ास धर्म, यानी, मुसलमानों के प्रति नफ़रत खुलकर सामने आ रही है, जो फ़ासीवादी राजनीति और मानसिकता का ही परिणाम है। उन्मादी और साम्प्रदायिक भाषणों का खुला खेल फर्रुख़ाबादी चल रहा है और चुनाव आयोग धृतराष्ट्र बना बैठा है।

प्रधानमन्त्री मोदी लगातार जो साम्प्रदायिक तीर छोड़ रहे हैं उससे एक बात तो स्पष्ट है कि चुनाव में भाजपा की स्थिति ठीक नहीं है। अपनी जीत को लेकर ये खुद भी निश्चिन्त नहीं हैं। इसीलिए समय-समय पर साम्प्रदायिक बातें करके माहौल बनाने की कोशिश लगातार की जा रही है। प्रधानमन्त्री मोदी लगातार इस फ़िराक़ में हैं कि किसी तरह लोगों के बीच में उन्मादी माहौल बने और फिर वह इस माहौल का इस्तेमाल चुनाव में वोट बटोरने के लिए कर सकें। **लेकिन इस चुनावी माहौल में हमें अपने ज़हन में ये बात बैठा लेने की ज़रूरत है कि ना हिन्दू ख़तरे में है, न मुसलमान ख़तरे में है, सच तो यह है कि इन साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों की सरकार ख़तरे में है।**

जब सैंया भये कोतवाल तो डर काहे का

मोदी की गोदी में बैठा केन्द्रीय चुनाव आयोग नाममात्र की "निष्पक्षता" का चोला भी उतार कर एकदम नंगई से मोदी के साथ खड़ा है। चुनाव आयोग की ओर से लागू आदर्श आचार संहिता के मुताबिक़ चुनाव प्रचार के दौरान न तो धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है और न ही धर्म, सम्प्रदाय और जाति के आधार पर वोट देने की अपील की जा सकती है। आचार संहिता के मुताबिक़, किसी भी धार्मिक या जातिगत समुदाय के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने वाले भाषण देने या नारे लगाने पर भी रोक है। **प्रधानमन्त्री मोदी और भाजपा नेताओं की तरफ़ से हर दिन साम्प्रदायिक और उन्मादी भाषणों की बौछारें की जा रही है लेकिन चुनाव आयोग आँख, कान और मुँह बन्द करके "मैंनू की" मुद्रा में है।**

चुनाव आयोग का रवैया इस बात का जीता जागता उदाहरण है कि पूँजीवादी संस्थानों की कथनी-करनी में कितना अन्तर होता है। कहने के लिए तो इसका काम लोगों के वोट डालने के जनवादी अधिकार की रक्षा करना और निष्पक्षता के साथ चुनाव करवाना है। लेकिन चुनाव आयोग फ़ासीवादी मोदी सरकार के साथ गलबहियाँ करने में व्यस्त है और स्वयं भाजपा के प्रवक्ता की भूमिका में है।

इस मुनाफ़ा केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था में, विशेष तौर पर फ़ासीवाद के दौर में, कोई भी संस्था आम मेहनतकश जनता के हित में न तो कम कर सकती है और न ही उसके जनवादी अधिकार को सुरक्षित रख सकती है। इस व्यवस्था का चरित्र ही ऐसा है कि यह आम मेहनतकश जनता विरोधी है और पूँजीपतियों, मालिकों, धन्नासेठों, मुनाफ़ाख़ोरों के पक्ष में खड़े होकर उनके हित को साधती है। फ़ासीवाद के दौर में निष्पक्ष होने का ड्रामा भी समाप्त हो जाता है और सभी पूँजीवादी संवैधानिक संस्थाएँ खुलकर फ़ासीवादी पार्टी, हमारे देश में भाजपा, के पक्षपोषण के काम में लग जाती हैं।

तू इधर-उधर की न बात कर, ये बता कि क़ाफ़िला क्यों लुटा !

पिछले 10 सालों से "प्रधानसेवक" की सुनी-सुनायी, घिसी-पिटी बातें सुनकर जनता ऊब चुकी है। इधर-उधर की बकैती सुनने के बजाए देश की मेहनतकश जनता यह जानना चाहती है कि क्या हुआ हर साल 2 करोड़ नौकरी का के वायदे का? क्यों देश में 32 करोड़ लोग बेरोज़गारी के धक्के खा रहे हैं? क्यों एक तरफ़ महँगाई मज़दूरों का खून पी रही है तो दूसरी तरफ़ चन्द मुट्ठी भर लोग ऐय्याशी की ज़िन्दगी जी रहे हैं? क्यों देश की मेहनतकश अवाम की आमदनी नहीं बढ़ रही है और "प्रधानसेवक" के खरबपति धन्नासेठ मित्रों यानी अम्बानी-अदाणी की सम्पत्ति बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से बढ़ रही है? क्यों हमारे देश में हर रोज़ साढ़े चार हज़ार बच्चे भूख और कुपोषण से अपना दम तोड़ दे रहे हैं और दूसरी तरफ़ एफ़सीआई के गोदामों में अनाज सड़ा दिये जा रहे हैं? क्यों देश के छात्र-नौजवान आत्महत्या करने को मज़बूर हैं? हवाई चप्पल पहनने वालों को जहाज़ में बैठने का सपना दिखाने वाले "प्रधानसेवक" के शासनकाल में क्यों लोगों का ट्रेनों में सफ़र करना भी मुश्किल हो गया है?

"प्रधानसेवक" के गुलाबी सपनों की फ़ेहरिस्त बहुत लम्बी है। यह तो महज़ चन्द वायदे हैं जो "प्रधानसेवक" ने अपने पिटारे से निकाले थे। **चूँकि ये वायदे भी 15 लाख की तरह जुमले और झूठे साबित हुए हैं इसीलिए जनता को असली मुद्दों से गुमराह करने के लिए "प्रधानसेवक" ने मछली, मुसलमान, मंगलसूत्र, मुस्लिम लीग का राग आलापना शुरू कर दिया है।** लेकिन देश की मेहनतकश जनता "प्रधानसेवक" की बाँटों और राज करो के हथकण्डे से अब काफ़ी हद तक परिचित हो गयी है। पिछले 10 सालों में देश को दंगे की आग में झोंकने की जो घिनौनी राजनीति फ़ासीवादी मोदी सरकार ने की है उससे भी जनता बख़ूबी वाक़िफ है। यही कारण है कि चुनाव में तमाम साम्प्रदायिक भाषणों के बावजूद प्रधानमन्त्री लोगों की भावनाओं को उभारकर उन्मादी माहौल बनाने अपेक्षाकृत रूप से सफल नहीं हो पा रहे हैं। समय-समय पर उनके भाषण उनकी बौख़लाहट और छटपटाहट को भी दिखा रहा है।

मोदी की साम्प्रदायिक राजनीति का मुँहतोड़ जवाब कैसे दिया जाये?

पिछले 10 सालों में फ़ासीवादी मोदी सरकार ने मज़दूरों-मेहनतकशों को सिर्फ़ लूटने-ख़सोटने और तबाह-बर्बाद करने का काम किया है। मोदी सरकार को इस बात का ख़ौफ भी है कि कहीं मज़दूरों का असन्तोष न फूट पड़े और आम मेहनतकश जनता एकजुट, संगठित और गोलबन्द होकर उन्हें इतिहास के कचरा पेटी में न फेंक दे जहाँ इन फ़ासिस्टों की असली ज़गह है। इसीलिए लगातार मंगलसूत्र, मुस्लिम लीग, आदि जैसे नकली मुद्दे लोगों के बीच में लाकर उनके बीच बँटवारे की दीवार खड़ी रखना चाहते हैं।

एक सवाल यह भी उठता है कि आख़िर क्या कारण है कि एक तरफ़ फ़ासिस्ट मोदी सरकार लगातार साम्प्रदायिक भाषणों की बौछार किये जा रही है लेकिन विपक्ष यानी कि कांग्रेस, आम आदमी पार्टी, समाजवादी पार्टी इत्यादि समेत तमाम तथाकथित "वामपन्थी" पार्टियाँ पर्याप्त रूप से इसका मुँहतोड़ ज़वाब देने में असफल है। इसका सीधा सा जवाब यही है कि भाजपा को मुँहतोड़ जवाब कभी भी कांग्रेस या अन्य पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ नहीं दे सकती हैं। **जिन्हें यह लगता है कि इण्डिया गठबन्धन भाजपा का विकल्प है और चुनाव में हराकर वह भाजपा की साम्प्रदायिक फ़ासीवाद राजनीति को निर्णायक रूप में हरा देंगे, ऐसा सोचना भी ग़ालिब की भाषा में कहें तो 'दिल को बहलाने के लिए ख़्याल अच्छा है' जैसा है।** यह भी पूँजीपति वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी करने वाली पार्टियों का ही गठबन्धन है। यह सच है कि एक फ़ासीवादी पूँजीवादी पार्टी व अन्य पूँजीवादी पार्टियों, उनके शासन व उनकी नीतियों में अन्तर होता है। लेकिन यह भी सच है कि आज फ़ासीवादी संघ परिवार और भाजपा पूँजीवादी राज्यसत्ता का भीतर से टेकओवर कर चुके हैं और बुर्जुआ जनवाद का खोल बरक़रार रखने से पैदा होने वाले अन्तरविरोध के कारण अगर वे सरकार से बाहर भी चले जायें तो राजनीति और समाज पर उनकी

(पेज 2 पर जारी)

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(छठी किश्त)

● सनी

हमने पिछले लेख में संगठन के प्रथम स्वरुप के अविर्भाव के रूप में जैकोबिन दल पर चर्चा की थी। बुर्जुआ वर्ग के राजनीतिक संघर्ष के उन्नत होने के साथ ही संघर्ष की आग में तपकर बुर्जुआ वर्ग का पहला पार्टी संगठन 'जैकोबिन दल' के रूप में पैदा हुआ। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और 19वीं सदी की शुरुआत में अधिकतम पश्चिमी देशों में पार्टियाँ जन्म ले चुकी थी। इंग्लैण्ड में टोरी तथा विग तो फ्रांस में जैकोबिन दल, जीरोंद दल, पार्टी ऑफ़ ऑर्डर और बोनापार्टिस्ट पार्टी तथा अमरीका में रिपब्लिकन पार्टी और फ़ेडेरलिस्ट पार्टी बनी। चीन में बुर्जुआ वर्ग की पार्टी क्वोमिन्ताङ् पार्टी 20वीं सदी की शुरुआत में जन्मी तो भारत में कांग्रेस की स्थापना 19वीं सदी के अन्त में हुई। पश्चिमी यूरोप में पूँजीवादी विकास के पहले होने के चलते यहाँ बुर्जुआ वर्ग का उद्भव और सामन्ती वर्ग से उसका संघर्ष भी पहले हुआ और इस वजह से ही बुर्जुआ वर्ग की राजनीतिक पार्टियाँ भी यहाँ पहले अस्तित्व में आयीं। पश्चिमी यूरोप में इंग्लैण्ड में कुछ राजनीतिक ग्रुप पहले से मौजूद थे परन्तु फ्रांसीसी क्रान्ति ने ही राजनीतिक पार्टी की अवधारणा को कायदे से जन्म दिया। जैकोबिन दल प्रबोधन काल के विचारों पर आधारित था। इसका एक कार्यक्रम था हालाँकि वह अभी पूर्णत: व्यवस्थित नहीं था। यह बुर्जुआ वर्ग के सामन्त वर्ग के ख़िलाफ़ राजनीतिक संघर्ष में एक नया अध्याय था। बुर्जुआ वर्ग के राजनीतिक विकास के सबसे प्रमुख मील के पत्थर फ्रांसीसी क्रान्ति पर बात करते हुए एंगेल्स लिखते हैं: *"फ्रांस की महान क्रान्ति ...पहली लड़ाई थी जिसने अपना धार्मिक जामा उतार फेंका था और जो खुल्लम-खुल्ला राजनीतिक ढंग से लड़ी गयी थी, ...फ्रांस में क्रान्ति का अर्थ था अतीत की परम्पराओं का सम्पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद।"*

पुनर्जागरण-धर्मसुधार आन्दोलन से प्रबोधन काल तक की यात्रा का सबसे उन्नत राजनीतिक शिखर बुर्जुआ वर्ग द्वारा राज्यसत्ता हासिल करने के लिए उसकी महानतम क्रान्ति यानी फ्रांसीसी क्रान्ति थी। इस क्रान्ति को नेतृत्व देने वाली पार्टी जैकोबिन दल का अस्तित्व में आना पुनर्जागरण से लेकर प्रबोधन तक चली विचारधारात्मक यात्रा का ही राजनीतिक निष्कर्ष था। हम इस लेख-श्रृंखला की पिछली कड़ी में ही यह बता चुके हैं की मार्क्स से लेकर लेनिन तक जैकोबिन दल की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। वर्ग, राजनीति और राजनीतिक पार्टी की अवधारणा की यह अति-संक्षिप्त चर्चा स्वत:स्फूर्तवाद, अराजकतावादी-संघाधिपत्यवाद सरीखी अर्थवादी और अनैतिहासिक समझदारियों के विभ्रम को दूर करने में भी मददगार है। हम उपरोक्त चर्चा से निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि जिस अनुपात में सामन्तवाद के विरुद्ध बुर्जुआ वर्ग का राजनीतिक वर्ग संघर्ष उन्नत होता है उसकी विचारधारा, राजनीति और कार्यक्रम स्पष्ट होते जाते हैं उसी अनुपात में उसका राजनीतिक संगठन भी ठोस रूप ग्रहण करता जाता है। उस तरह ही हम देख सकते हैं कि जैसे-जैसे मज़दूर वर्ग राजनीतिक तौर पर सयाना होता है, उसका राजनीतिक वर्ग संघर्ष विकसित होता है वैसे-वैसे वह ट्रेड यूनियन राजनीति से आगे बढ़कर समाजवादी राजनीति तक पहुँचता है (क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का पैदा होना और मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में समाजवादी राजनीति को ले जाना स्वयं ऐतिहासिक वर्ग संघर्षों के विकसित होने की प्रक्रिया का अंग होता है), वह संघ, ट्रेड यूनियन आदि जैसे वर्गीय संगठनों से आगे बढ़कर अपने आपको सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक केन्द्र यानी अपनी राजनीतिक हिरावल पार्टी के रूप में गठित करता है।

सर्वहारा वर्ग भी विकास की विभिन्न मंज़िलों से गुज़रता है। मशीनों को तोड़ने से लेकर ट्रेड यूनियन बनाना और अन्ततः राजनीतिक पार्टी बनाना यही दर्शाता है। सर्वहारा वर्ग अपनी पहली राजनीतिक शिक्षा बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में सामन्तों के ख़िलाफ़ चल रहे संघर्षों में लेता है। कम्युनिस्ट घोषणापत्र में मार्क्स-एंगेल्स लिखते हैं:

"सर्वहारा वर्ग विकास की विभिन्न मंज़िलों से गुज़रता है। जन्मकाल से ही उसका संघर्ष शुरू हो जाता है। शुरू में अकेले-दुकले मज़दूर लड़ते हैं, फिर एक कारख़ाने के मज़दूर मिलकर लड़ते हैं, तब फिर एक उद्योग के एक इलाके के सब मज़दूर एक साथ उस पूँजीपति से मोर्चा लेते हैं जो उनका सीधे-सीधे शोषण करता है। उनका हमला उत्पादन की बुर्जुआ स्थितियों पर नहीं होता बल्कि खुद उत्पादन के औज़ारों पर होता है। वे अपनी मेहनत के साथ होड़ करने वाले बाहर से मँगाये गये सामानों को नष्ट कर देते हैं, मशीनों को चूर कर देते हैं, फैक्टरियों में आग लगा देते हैं और मध्ययुग के कारीगर की खोई हुई हैसियत को फिर से कायम करने की बलपूर्वक कोशिश करते हैं।

"इस अवस्था में मज़दूर देशभर में बिखरे हुए, असम्बद्ध और अपनी ही आपसी होड़ के कारण बँटे हुए जनसमुदाय होते हैं। अगर कहीं मिलकर वे अपना एक ठोस संगठन बना भी लेते हैं तो यह अभी उनकी सक्रिय एकता का फल नहीं, बल्कि बुर्जुआ वर्ग की एकता का फल होता है, क्योंकि बुर्जुआ वर्ग को अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूरे सर्वहारा वर्ग को गतिशील करना पड़ता है और वह ऐसा करने में अभी कुछ समय तक समर्थ भी होता है। इसलिए इस अवस्था में सर्वहारा वर्ग अपने शत्रुओं से नहीं, बल्कि अपने शत्रुओं के शत्रुओं से, निरंकुश राजतन्त्र के अवशेषों, भूस्वामियों, गैर-औद्योगिक बुर्जुआओं, निम्न-बुर्जुआओं से लड़ता है। इस प्रकार, इतिहास की समस्त गतिविधि के सूत्र बुर्जुआ वर्ग के हाथों में केन्द्रित रहते हैं; इस प्रकार हासिल की गयी हर जीत बुर्जुआ वर्ग की जीत होती है।

"लेकिन उद्योग के विकास के साथ-साथ सर्वहारा वर्ग की संख्या में ही वृद्धि नहीं होती, बल्कि वह बड़ी-बड़ी जमातों में संकेन्द्रित हो जाता है, उसकी ताकत बढ़ जाती है और उसे अपनी इस ताकत का अधिकाधिक अहसास होने लगता है। मशीनें जिस अनुपात में श्रम के सभी भेदों को मिटाती जाती हैं और लगभग सभी जगह मज़दूरी को एक ही निम्न स्तर पर लाती जाती हैं, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग की पाँतों में नाना प्रकार के हित और जीवन की स्थितियाँ अधिकाधिक एकसम होती जाती हैं। बुर्जुआ वर्ग की बढ़ती हुई आपसी होड़ और उससे पैदा होने वाले व्यापारिक संकटों के कारण मज़दूरी और भी अस्थिर हो जाती है। मशीनों में लगातार सुधार, जो निरन्तर तेज़ी के साथ बढ़ता जाता है, मज़दूरों की जीविका को अधिकाधिक अनिश्चित बना देता है। अलग-अलग मज़दूरों और अलग-अलग पूँजीपतियों की टक्करें अधिकाधिक रूप से दो वर्गों के बीच की टक्करों की शक्ल अख़्तियार करती जाती हैं। और तब बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध मज़दूर अपने संगठन (ट्रेड यूनियनें) बनाने लगते हैं, मज़दूरी की दर को कायम रखने के लिए वे संघबद्ध होते हैं; समय-समय पर होने वाली इन टक्करों के लिए पहले से तैयार रहने के निमित्त वे स्थायी संघों की स्थापना करते हैं। जहाँ-तहाँ उनकी लड़ाई बलवों का रूप धारण कर लेती है।"

...

"आधुनिक उद्योग द्वारा उत्पन्न किये गये संचार साधनों से, जो अलग-अलग जगहों के मज़दूरों को एक-दूसरे के सम्पर्क में ला देते हैं, एकता के इस काम में मदद मिलती है। एक ही प्रकार के अनगिनत स्थानीय संघर्षों को केन्द्रीकृत करके उन्हें एक राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष का रूप देने के लिए बस इसी प्रकार के सम्पर्क की ज़रूरत होती है। लेकिन प्रत्येक वर्ग संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष होता है।"

...

"सर्वहाराओं का एक वर्ग के रूप में संगठन और फलतः एक राजनीतिक पार्टी के रूप में उनका संगठन उनकी आपसी होड़ के कारण बराबर गड़बड़ी में पड़ जाता है। लेकिन हर बार वह फिर उठ खड़ा होता है - पहले से भी अधिक मज़बूत, दृढ़ और शक्तिशाली बनकर। ख़ुद बुर्जुआ वर्ग की भीतरी फूटों का फायदा उठाकर वह मज़दूरों के अलग-अलग हितों को क़ानूनी तौर पर भी मनवा लेता है। इंग्लैण्ड में दस घण्टे के काम के दिन का क़ानून इसी तरह पारित हुआ था।"

मज़दूर वर्ग ने राजनीतिक तौर पर उन्नत होने के साथ ही देश स्तर पर ख़ुद को 'पार्टी' के रूप में संगठित करने का प्रयास किया। ऐसी राजनीतिक पार्टियों को हिरावल के रूप में कार्यरत होने में सक्षम बनाने तथा सर्वहारा वर्ग के दर्शन और विज्ञान से परिचित करने का काम मार्क्स-एंगेल्स ने किया। इसका समाहार करते हुए कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र में मार्क्स-एंगेल्स लिखते हैं *"कम्युनिस्ट मज़दूरों के तात्कालिक लक्ष्यों के लिए लड़ते हैं, उनके सामयिक हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं, किन्तु वर्तमान के आन्दोलन में वे इस आन्दोलन के भविष्य का भी प्रतिनिधित्व करते हैं और उसका ध्यान रखते हैं।"* मज़दूर वर्ग के जो पहले संगठन उन्नीसवीं सदी के मध्य में अस्तित्व में आते हैं उनका चरित्र तख़्तापलट के लिए बने हुए संगठनों का था। इनसे आगे बढ़कर मार्क्स-एंगेल्स के नेतृत्व में बनी **कम्युनिस्ट लीग** ऐसा पहला संगठन था जिसमें कई देशों के मज़दूर थे और जिसके पास विचारधारा, कार्यक्रम तथा राजनीतिक लाइन मौजूद थी। लेकिन यह ज्ञात रहे कि इस संगठन का चरित्र अभी मज़दूर वर्ग की लेनिनवादी पार्टी सरीखा नहीं था। यह *"आरम्भ में पूरी तरह जर्मन, आगे चलकर अन्तरराष्ट्रीय, और 1848 तक महाद्वीप की राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत अपरिहार्य रूप से एक गुप्त संस्था थी। नवम्बर, 1847 में लन्दन में हुई लीग की कांग्रेस में मार्क्स और एंगेल्स को एक सम्पूर्ण सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पार्टी कार्यक्रम प्रकाशनार्थ तैयार करने का कार्य सौंपा गया।"*

कम्युनिस्ट लीग को मार्क्स-एंगेल्स ने 1852 में भंग कर दिया क्योंकि वह भूमिका निभा चुकी थी। 1852 के कोलोन मुक़दमे के बाद यूरोप के मज़दूर आन्दोलन के पहले चरण का पर्दा गिरता है। 1847 से 1852 तक कम्युनिस्ट लीग (1847 से पहले लीग का नाम लीग ऑफ़ जस्ट था) ने मज़दूरों को संगठित किया, क्रान्ति में नेतृत्व दिया और सबसे ज़रूरी उनके बैनर पर **कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो** के अमिट सैद्धान्तिक पैगाम को अंकित कर दिया। इसके बाद मार्क्स के नेतृत्व में 1864 में बना प्रथम इण्टरनेशनल मज़दूर आन्दोलन के राजनीतिक संगठन, तालमेल केन्द्र तथा परामर्शदाता के रूप में काम कर रहा था। एंगेल्स बताते हैं :

"जब यूरोप के मज़दूर वर्ग ने शासक वर्गों पर एक और प्रहार करने के लिए पर्याप्त शक्ति फिर से संचित कर ली, तो अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ का जन्म हुआ। परन्तु यह संघ, जो यूरोप तथा अमरीका के सारे संघर्षशील सर्वहारा को एकजुट करने के निश्चित उद्देश्य से बनाया गया था, घोषणापत्र में निरूपित सिद्धान्तों को एकदम ही घोषित नहीं कर सकता था। इण्टरनेशनल के लिए ऐसे कार्यक्रम का होना अनिवार्य था, जो इतना व्यापक हो कि इंग्लैण्ड की ट्रेड-यूनियनों, फ्रांस, बेल्जियम, इटली तथा स्पेन में प्रूदों के अनुयायियों और जर्मनी में लासालपन्थियों को स्वीकार्य हो सके। मार्क्स को, जिन्होंने उस कार्यक्रम की रचना सभी पक्षों के लिए सन्तोषजनक ढंग से की, मज़दूर वर्ग के बौद्धिक विकास पर पूरा भरोसा था, जिसका संयुक्त कार्यकलाप तथा पारस्परिक विचार-विमर्श के फलस्वरूप पैदा होना अवश्यम्भावी था।"

प्रथम इण्टरनेशनल को सन 1876 में भंग कर दिया गया। जर्मनी की मज़दूर पार्टी को सही विचारधारा और कार्यक्रम देने में मार्क्स और एंगेल्स की भूमिका थी परन्तु अभी तक लेनिनवादी पार्टी की भौतिक ज़मीन नहीं पैदा हुई थी। इजारेदार पूँजीवाद पूर्व काल में बुर्जुआ राज्यसत्ता सुदृढ़, सुसंगत और सुव्यवस्थित रूप लेने की प्रक्रिया में थी और उसके साथ संघर्ष में अपने अनुभवों से सीखते हुए ही सर्वहारा वर्ग भी अपने सांगठनिक सिद्धान्त को विकसित कर रहा था। इजारेदार पूँजीवाद के दौर में पूँजीवादी राज्यसत्ता पहले से ज़्यादा सुदृढ़, दमनकारी, व्यवस्थित और मज़बूत होती है और अधिक से अधिक सैन्यकरण के साथ जनवाद-विरोधी चरित्र अख़्तियार करती जाती है। लेनिन इन दो दौरों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:

"प्राक्-इजारेदार पूँजीवाद को, 19वीं शताब्दी के आठवें दशक में वह अपने चरमोत्कर्ष पर था, उसके आधारभूत आर्थिक गुणों के बल पर, जिन्हें ब्रिटेन में और अमरीका

(पेज 16 पर जारी)

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 13 से आगे)

पेश करने में असमर्थ है जिसका विरोधी भी आदर करें और जो ख़ुद अपने पेशे की कला में – राजनीतिक पुलिस को मात देने की कला में – अनुभवहीन और फूहड़ साबित हो चुका है, ज़ाहिर है ऐसा आदमी क्रान्तिकारी नहीं, दयनीय नौसिखुआ है!" *(ज़ोर हमारा)*

हमने चर्चा की थी कि अर्थवाद की प्रवृत्ति आम तौर पर सांगठनिक कार्यों के दायरे और विस्तार को संकीर्ण बनाने की हिमायती होती है; हालाँकि इसके लिए वह अपनी इस समझदारी को कठघरे में खड़ा नहीं करती है बल्कि परिस्थितियों पर ही इसका ठीकरा फोड़ती है। *राबोचेये द्येलो* के एक अर्थवादी लेखक को उद्धृत करते हुए लेनिन उसकी इस धारणा का खण्डन पेश करते है कि क्रान्तिकारी कार्य करने के योग्य बहुत कम लोग होते हैं। लेनिन अर्थवादी तर्क से उपजी इस भ्रामक धारणा पर चोट करते हुए टिप्पणी करते हैं कि वास्तव में समाज क्रान्तिकारी कार्य के योग्य बहुत से व्यक्तियों को जन्म देता है लेकिन हम उन सबसे काम नहीं ले पाते हैं। पूँजीवाद अपनी नैसर्गिक गति से मज़दूर वर्ग और जनसमुदायों के अलग-अलग हिस्सों में असन्तोष को जन्म देता रहता है और अपने इस असन्तोष को वे व्यक्त भी करना चाहते हैं लेकिन राजनीतिक नेताओं और क़ाबिल संगठनकर्ताओं की कमी के कारण इस गुस्से को सुचारू और समुचित ढंग से ठोस आकार दे पाने में क्रान्तिकारी शक्तियों की असमर्थता रही है। लेनिन बताते हैं कि क्रान्तिकारी संगठनों का विकास और प्रगति न केवल मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के विकास की तुलना में पिछड़ा हुआ है बल्कि जनवादी आन्दोलन के विकास की तुलना में भी पिछड़ा हुआ है। लेनिन अर्थवादी संकीर्णतावादी नज़रिये के विपरीत सर्वहारा वर्गीय नज़रिया पेश करते हुए **'क्या करें?'** में लिखते हैं:

"आन्दोलन का स्वतःस्फूर्त आधार जितना विशाल है, उसकी तुलना में क्रान्तिकारी कार्य का विस्तार बहुत संकुचित है, उसे चारों ओर से "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष" के तुच्छ सिद्धान्त ने जकड़ रखा है। फिर भी इस समय न सिर्फ़ सामाजिक-जनवादी राजनीतिक उद्वेलनकर्ताओं को, बल्कि सामाजिक-जनवादी संगठनकर्ताओं को भी "आबादी के सभी वर्गों में जाना" चाहिए। शायद ही किसी व्यावहारिक कार्यकर्त्ता को इस बात में सन्देह होगा कि सामाजिक-जनवादी अपने सांगठनिक कामों की हज़ारों छोटी-छोटी ज़िम्मेदारियों को विभिन्न वर्गों के अलग-अलग प्रतिनिधियों के बीच बाँट सकते हैं।"

इसके बाद लेनिन इस काम की पूर्वशर्त के तौर पर एक बार फिर **पेशेवर क्रान्तिकारियों के संगठन की अनिवार्यता** पर बल देते है। लेनिन कहते हैं:

"...काम के इन तमाम छोटे-छोटे टुकड़ों को एक लड़ी में पिरोने के लिए, जिससे की काम तो बंटे, पर आन्दोलन न बाँट जाये, और इस प्रकार के छोटे-मोटे काम करनेवालों के मन में यह विश्वास पैदा करने के लिए कि उनका काम आवश्यक और महत्वपूर्ण है, जिस विश्वास के बिना वे कभी काम नहीं करेंगे, यह ज़रूरी है कि हमारे पास परखे हुए क्रान्तिकारियों का एक मज़बूत संगठन हो। **ऐसा संगठन जितना ही गुप्त होगा, जनता को पार्टी में उतना ही व्यापक और उतना ही दृढ़ विश्वास होगा** जैसा कि हम जानते हैं, युद्ध के समय न केवल अपनी सेना का ख़ुद अपनी शक्ति में विश्वास दृढ़ करना, बल्कि दुश्मन को और सभी तटस्थ लोगों को भी इस ताक़त का यक़ीन दिलाना आवश्यक होता है, कभी-कभी तो कुछ शक्तियों की मित्रतापूर्ण तटस्थता ही मामले का निपटारा कर देती है। **यदि हमारे पास ऐसा संगठन हो, जो मज़बूत सैद्धान्तिक नींव पर खड़ा हो और जिसके पास एक सामजिक-जनवादी मुखपत्र भी हो, तो इसका कोई डर नहीं रहेगा कि आन्दोलन की ओर जो बहुत-से "बाहरी" लोग आकर्षित हुए हैं, वे उसे पथभ्रष्ट कर देंगे। ... संक्षेप में, विशेषीकरण लाज़िमी तौर से केन्द्रीकरण की पूर्वापेक्षा करता है और उसकी बिना शर्त माँग भी करता है।**" *(ज़ोर हमारा)*

लेनिन आगे यह भी बताते हैं कि हिरावल पार्टी स्थानीय कामों के साथ ही पूरे देश के पैमाने पर क्रान्तिकारी कामों को संचालित करती है। लेनिन ऐसे तमाम लोगों को भी आड़े हाथों लेते हैं जो कहते हैं कि पार्टी के केन्द्रीकृत ढाँचे के कारण स्थानीय काम प्रभावित होंगे और केवल राष्ट्रीय स्तर के कामों को तरजीह दी जायेगी। लेनिन जवाब देते हैं कि यह हिरावल पार्टी का केन्द्रीकृत ढाँचा ही है जो यह सुनिश्चित करता है कि स्थानीय कामों और देशव्यापी कामों के बीच द्वन्द्वात्मक तालमेल हो और स्थानीयतावाद के भटकाव से बचा जाये। इसके साथ ही लेनिन अर्थवादियों की इस बात के लिए भी आलोचना पेश करते हैं कि वे एक मज़बूत क्रान्तिकारी संगठन की ज़रूरत को षड्यन्त्रकारी दृष्टिकोण से जोड़ते हैं और सामाजिक-जनवादियों यानी लेनिन व उनके साथियों पर राजनीतिक संघर्ष को एक षड्यन्त्र तक सीमित करने का आरोप लगाते हैं। लेनिन इस ग़लत अर्थवादी दलील का तर्कपूर्ण खण्डन प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इसके आगे की चर्चा अब अगले अंक में।

(अगले अंक में जारी)

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(पेज 15 से आगे)

में सबसे ठेठ अभिव्यक्ति मिली, अपेक्षाकृत अधिकतम शान्तिप्रेम तथा स्वतन्त्रता प्रेम ने विशिष्ट बनाया था। परन्तु साम्राज्यवाद को, याने इजारेदार पूँजीवाद को, जो केवल 20वीं शताब्दी में जाकर अन्तिम रूप से परिपक्व हुआ, उसके आधारभूत आर्थिक गुणों के बल पर न्यूनतम शान्तिप्रेम तथा स्वतन्त्रता-प्रेम और सैन्यवाद के अधिकतम तथा सर्वव्यापी विकास ने विशिष्ट बनाया है।"

लेनिन ने ही साम्राज्यवाद के युग तक विकसित हुए पूँजीवादी राज्यसत्ता के चरित्र को पहचाना और तत्पश्चात पार्टी सिद्धान्त रखा। ऐसा नहीं है कि लेनिन की पार्टी अवधारणा मार्क्स-एंगेल्स की समझदारी से बिलकुल अलग है। कम्युनिस्ट लीग, प्रथम इण्टरनेशनल, जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के प्रयोग लेनिनवादी पार्टी अवधारणा के लिए ज़रूरी थे और उसके विकास की प्रारम्भिक मंज़िलें थे। लेनिनवादी पार्टी सिद्धान्त के विकास को लेनिन के समय तक सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष, उसके राजनीतिक संगठन के प्रयासों, बुर्जुआ राज्यसत्ता के एक दमनकारी उपकरण के रूप में विकास और व्यवस्थित होने के ऐतिहासिक अनुभवों के सामान्यीकरण और समाहार के रूप में ही समझा जा सकता है। स्वयं मार्क्स और एंगेल्स ने आर्थिक संघर्ष के लिए बने जनसंगठन और राजनीतिक कार्यभार तथा क़ानूनी और गुप्त कार्य पर ज़रूरी शिक्षाएं भी दीं। मार्क्स और एंगेल्स के दौर में कई यूरोपीय देशों में बुर्जुआ राज्यसत्ता व्यवस्थित होन के दौर में थी, सामन्तवाद पर बुर्जुआ वर्ग की निर्णायक विजय को अभी कुछ दशक ही बीते थे, और बुर्जुआ राज्यसत्ता के सुदृढ़ीकरण के दौर में ही सर्वहारा वर्ग ने अपने क्रान्तिकारी राजनीतिक संघर्षों की भी शुरुआत कर दी थी। मार्क्स और एंगेल्स ने संघर्ष के हर दौर और हर अवस्था के अनुसार पार्टी संगठन के प्रयोग किये और पार्टी सिद्धान्त को उसके अनुरूप विकसित किया। लेनिन का पार्टी सिद्धान्त मार्क्स-एंगेल्स की इन शिक्षाओं को भी समेट लेता है। लेनिन ख़ुद बताते हैं कि मार्क्स-एंगेल्स ने किस प्रकार आर्थिक संघर्ष के संगठन और राजनीतिक कार्यभार के बारे में सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति स्पष्ट की :

"विकास की हर मंज़िल में, हर क्षण में सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति को मानव इतिहास की यह वस्तुपरक अनिवार्य द्वन्द्वात्मकता ध्यान में रखनी होगी। एक ओर, अग्रगामी वर्ग की चेतना, शक्ति तथा संघर्ष-क्षमता के विकास के लिए राजनीतिक गतिरोध के, अथवा "कछुआ चाल वाले", "शान्तिमय" कहलाये जाने वाले विकास के दौरों का उपयोग करना और दूसरी ओर, इस उपयोग के सारे कामों को इस वर्ग की गतिमानता के "अन्तिम लक्ष्य" की दिशा में तथा उस वर्ग में "अपने अन्दर बीस-बीस साल मूर्त करने वाले" महान दिनों की महान समस्याओं के व्यावहारिक हल की क्षमता की सर्जना की दिशा में निदेशित करना। इस सम्बन्ध में मार्क्स के दो तर्क विशेष महत्वपूर्ण हैं: एक 'दर्शन की दरिद्रता' में सर्वहारा वर्ग के आर्थिक संघर्ष तथा आर्थिक संगठन के सम्बन्ध में है और दूसरा उसके राजनीतिक कार्यभार के सम्बन्ध में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में है। पहला कहता है: "बड़ा उद्योग एक स्थान पर एक दूसरे से अपरिचित लोगों की भीड़ जमा कर देता है। प्रतिद्वन्द्विता उनके हितों को अलग-अलग कर देती है। लेकिन मज़दूरी की रक्षा, अपने मालिकों के विरुद्ध उनका यह सामान्य हित उन्हें प्रतिरोध, सहयोग के साझे विचार से एकताबद्ध करता है... पहले उनके अलग-अलग समूह अपने को सहयोगी दलों में एकताबद्ध कर लेते हैं और सतत एकताबद्ध पूँजी के मुकाबले मज़दूरी की रक्षा की अपेक्षा मज़दूरों द्वारा अपने संगठन की रक्षा अधिक आवश्यक बन जाती है... इस संघर्ष में, जो वस्तुतः गृहयुद्ध होता है, आने वाले संग्राम के निमित्त सभी तत्व एकीभूत और विकसित होते हैं। इस हद पर पहुँचकर सहयोग राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।" यहाँ हमारे सामने कई दशाब्दियों के लिए, "आनेवाले संग्राम के निमित्त" सर्वहारा की शक्ति-सिद्धि की लम्बी मुद्दत के लिए आर्थिक संघर्ष तथा ट्रेड-यूनियन आन्दोलन का कार्यक्रम और कार्यनीति प्रस्तुत हैं।

"'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' ने राजनीतिक संघर्ष की कार्यनीति के बारे में मार्क्सवाद की आधारभूत प्रस्थापना प्रस्तुत की: "कम्युनिस्ट मज़दूरों के तात्कालिक लक्ष्यों के लिए लड़ते हैं, उनके सामयिक हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं, किन्तु वर्तमान के आन्दोलन में वे इस आन्दोलन के भविष्य का भी प्रतिनिधित्व करते हैं और उसका ध्यान रखते हैं।""

क़ानूनी कार्य और गैर-क़ानूनी कार्य पर बात करते हुए लेनिन मार्क्स की शिक्षाओं का ज़िक्र करते हैं:

"राजनीतिक गतिरोध और बुर्जुआ वैधानिकता के बोलबाले के दौर में संघर्ष के क़ानूनी साधनों के उपयोग की पूरी तरह कद्र करते हुए मार्क्स ने 1877-1878 में समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून पास होने के बाद मोस्ट की "क्रान्तिकारी लफ़्फ़ाज़ी" की तीक्ष्ण निन्दा की। लेकिन उन्होंने उस आधिकाधिक सामाजिक-जनवादी पार्टी पर अस्थायी रूप से हावी तत्कालीन अवसरवाद पर भी उतना ही तीव्र हमला किया, जिसने समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून के जवाब में गैर-क़ानूनी संघर्ष की ओर कदम बढ़ाने का संकल्प, दृढ़ता, क्रान्तिकारिता, तत्परता तुरन्त प्रदर्शित नहीं की।"

मार्क्स और एंगेल्स द्वारा पार्टी की अवधारणा एक हिरावल पार्टी के तौर पर आती है। कम्युनिस्ट लीग, प्रथम इण्टरनेशनल से लेकर जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी मार्क्स एंगेल्स के जीवन काल में उनके नेतृत्व में बनी लेकिन तीनों का ही स्वरुप अलग था। मार्क्स-एंगेल्स ने क्रान्तिकारी अख़बार निकाले, क्रान्तिकारी आन्दोलन के रणकौशल और रणनीति को आकार दिया, आर्थिक संघर्ष चलाने वाली ट्रेड यूनियनों और क्रान्ति का नेतृत्व करने वाली हिरावल पार्टी की ज़रूरत पर बल दिया तथा संगठन में केन्द्रीकरण के महत्त्व को इंगित किया। इस रूप में मार्क्स व एंगेल्स ने लेनिनवादी पार्टी सिद्धान्त के लिए ज़रूरी वैचारिक तत्वों की बुनियाद डाली थी। लेनिनवादी पार्टी सिद्धान्त के रूप में सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक संगठन का सिद्धान्त एक मुकम्मिल मंज़िल तक पहुँचता है और वह लेनिन के दौर में ही सम्भव था। इतिहास ने उनके समक्ष यह कार्यभार रखा ही नहीं था। मार्क्स एंगेल्स के दौर से सीखते हुए और अपने दौर की विशिष्टताओं को समझकर ही पार्टी सिद्धान्त लेनिन पेश करते हैं।

आगे हम कम्युनिस्ट लीग, प्रथम इण्टरनेशनल, जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी के बनने पर मार्क्स-एंगेल्स के विचार रखेंगे ताकि लेनिनवादी पार्टी सिद्धान्त की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि को और गहराई से समझ सकें।

(भूल सुधार: अप्रैल 2023 मज़दूर बिगुल अंक लेख-श्रृंखला की पिछली कड़ी में ग़लती से किश्त-संख्या चौथी बतायी गयी थी। वह पाँचवीं किश्त थी।)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 20

अध्याय – 16

पूँजीवादी संचय का आम नियम

● अभिनव

पिछले अध्याय में हमने देखा कि किस प्रकार पूँजी बेशी मूल्य पैदा करती है, किस प्रकार बेशी मूल्य पूँजी में रूपान्तरित होता है, पूँजी संचय की दर किस प्रकार निर्धारित होती है और वे कौन-से कारक हैं जो पूँजी संचय की दर को बढ़ा या घटा सकते हैं। हमने यह भी देखा कि साधारण पुनरुत्पादन पूँजीवादी व्यवस्था का आम नियम नहीं है, बल्कि मुनाफ़े को अधिकतम बनाते जाने की अन्धी हवस और प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित इस व्यवस्था का आम नियम है विस्तारित पुनरुत्पादन या पूँजी का संचय। इस अध्याय में हम देखेंगे कि पूँजीवादी संचय की लगातार जारी प्रक्रिया के आम नियम क्या हैं। दूसरे शब्दों में, निरन्तर जारी पूँजी संचय के क्या परिणाम सामने आते हैं और किन स्थितियों में वे प्रकट होते हैं। लेकिन उन्हें समझने के लिए हमें पहले पूँजी के आवयविक संघटन की अवधारणा पर थोड़ा विस्तार से विचार करना होगा।

पूँजी का आवयविक संघटन

मार्क्स बताते हैं कि जब हम पूँजीवादी संचय के आम नियमों की पड़ताल करते हैं, तो हमारा मुख्य उद्देश्य होता है पूँजीवादी संचय के मज़दूर वर्ग पर असर का अध्ययन करना। इसमें सबसे बुनियादी पहलू है पूँजी के आवयविक संघटन (organic composition) को समझना। इसके बारे में कुछ बातें हम पहले कर चुके हैं। लेकिन यहाँ उन्हें संक्षेप में दुहरा देना उपयोगी होगा। स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात को हम पूँजी का आवयविक संघटन कहते हैं। इसे दो अर्थों में समझा जा सकता है: पहला, मूल्य-संघटन (value composition) के अनुसार और दूसरा, तकनीकी या भौतिक संघटन (technical composition) के अनुसार। मूल्य-संघटन का अर्थ बस यह है कि मुद्रा की एक मात्रा, यानी मूल्य की एक मात्रा के रूप में स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी के बीच क्या अनुपात है, यानी निवेशित पूँजी में उत्पादन के समस्त साधनों के कुल मूल्य और समस्त श्रमशक्ति के कुल मूल्य के बीच क्या अनुपात है। भौतिक या तकनीकी संघटन का अर्थ होता है कि उत्पादन के साधनों की मात्रा और श्रमशक्ति की मात्रा यानी मज़दूरों की संख्या में क्या अनुपात है, दूसरे शब्दों में, औसतन कितने उत्पादन के साधनों को कितने मज़दूर उत्पाद में तब्दील करते हैं।

यह सम्भव है कि भौतिक/तकनीकी संघटन बदले लेकिन मूल्य-संघटन उसी रफ़्तार से न बदले या मूल्य-संघटन बदले और भौतिक संघटन उसी दर से न बदले। इसका कारण यह होता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादकता के सतत् विकास के साथ आम तौर पर मशीनों की क़ीमतों में भी कमी आती है। साथ ही, मज़दूरी की दर भी विभिन्न कारकों के चलते ऊपर-नीचे होती रहती है। इसलिए श्रमशक्ति पर किये जाने वाले निवेश में परिवर्तन कभी-कभार उसी अनुपात में नहीं होता है, जिस अनुपात में श्रमशक्ति की भौतिक मात्रा, यानी मज़दूरों की संख्या को बढ़ाया या घटाया जाता है। नतीजतन, भौतिक संघटन में होने वाले परिवर्तन अक्सर मूल्य-संघटन में एकदम समानुपातिक रूप में प्रतिबिम्बित नहीं होते हैं और मूल्य-संघटन में होने वाले परिवर्तन हमेशा भौतिक संघटन में बिल्कुल समानुपातिक रूप से नहीं प्रतिबिम्बित होते हैं। आम तौर पर, मूल्य-संघटन में आने वाले परिवर्तन और भौतिक संघटन में आने वाले परितर्वनों में क़रीबी सम्बन्ध होता है। यानी, भौतिक संघटन में होने वाले परितर्वन किसी न किसी रूप में मूल्य-संघटन में प्रतिबिम्बित होते हैं। पूँजी के आवयविक संघटन से मार्क्स का अर्थ यह है *: जिस हद तक पूँजी के भौतिक/तकनीकी संघटन में होने वाले परिवर्तन पूँजी के मूल्य-संघटन में अभिव्यक्त होते हैं, उसे पूँजी का आवयविक संघटन कहा जाता है।*

किसी भी देश में उत्पादन की कई शाखाएँ होती हैं। हर शाखा में कई निजी पूँजीपति उत्पादन कर रहे होते हैं। सबकी पूँजियों के आवयविक संघटन अलग-अलग होते हैं। यदि हम किसी एक शाखा में सक्रिय सभी पूँजीपतियों की पूँजियों के अलग-अलग आवयविक संघटनों का औसत निकाले तो हमें उस पूरी शाखा में लगी पूँजी का आवयविक संघटन पता चल जाता है। यह औसत, *सामाजिक तौर पर कहें*, तो उस उत्पादन की शाखा में उत्पादन की प्रकृति और उत्पादक शक्तियों के विकास और साथ ही उसके मुनाफ़े की औसत दर से निर्धारित होता है। सभी शाखाओं के आवयविक संघटनों के बीच इन वजहों से अन्तर मौजूद होता है। यानी, उत्पादन की अलग-अलग शाखाओं में पूँजी का आवयविक संघटन आम तौर पर अलग-अलग होता है। यदि हम किसी देश की अर्थव्यवस्था में मौजूद सभी उत्पादन की शाखाओं में लगी समूची पूँजी के आवयविक संघटन को निकालें, यानी हरेक शाखा में लगी कुल स्थिर पूँजी और कुल परिवर्तनशील पूँजी को जोड़ लें और फिर उनके बीच का अनुपात निकालें, तो हमें किसी देश की कुल सामाजिक पूँजी का आवयविक संघटन प्राप्त होता है। जब मार्क्स पूँजीवादी संचय की सतत् जारी प्रक्रिया के मज़दूर वर्ग पर पड़ने वाले आम प्रभावों की, यानी कि पूँजीवादी संचय के आम नियमों की बात करते हैं, तो उनका सरोकार अलग-अलग शाखाओं में पूँजी के अलग-अलग आवयविक संघटनों से नहीं है, बल्कि आम तौर पर पूरी अर्थव्यवस्था में लगी कुल सामाजिक पूँजी के आवयविक संघटन से है। केवल इसी के आधार पर हम आम तौर पर पूँजीवादी संचय के मज़दूर वर्ग पर पड़ने वाले प्रभावों को समझ सकते हैं।

अब हम देखेंगे कि पूँजी के आवयविक संघटन में आने वाले बदलावों के हिसाब से मज़दूर वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ता है। सबसे पहले हम समझेंगे कि पूँजी के आवयविक संघटन के समान रहने पर पूँजी संचय होने का श्रमशक्ति के लिए माँग पर क्या असर पड़ता है। इसके आधार पर हम समझ सकते हैं कि ऐसे में मज़दूर वर्ग के लिए आम तौर पर रोज़गार की और मज़दूरी की औसत दर की क्या स्थिति होगी। इसके बाद हम पूँजी के आवयविक संघटन के बढ़ने पर पूँजी संचय होने के श्रमशक्ति के लिए माँग और इस प्रकार मज़दूर वर्ग पर असर की पड़ताल करेंगे।

पूँजी के आवयविक संघटन के समान रहने पर मज़दूर वर्ग पर पूँजीवादी संचय के प्रभाव

पूँजी के आवयविक संघटन के समान रहने पर पूँजी संचय होने का, यानी निवेशित पूँजी की मात्रा बढ़ने का, अर्थ होगा कि स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी दोनों में ही बढ़ोत्तरी होगी। यह बढ़ोत्तरी इस प्रकार होगी कि स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी का अनुपात पहले के ही समान होगा। मिसाल के तौर पर, यदि पहले कुल रु. 600 निवेशित किये गये थे, जिसमें रु. 400 स्थिर पूँजी के रूप में लगे थे जबकि रु. 200 परिवर्तनशील पूँजी के रूप में लगे थे, तो पूँजी का आवयविक संघटन हुआ 2:1। यदि उत्पादन की प्रक्रिया में रु. 400 बेशी मूल्य के रूप में पैदा हुए और मान लें कि पूँजीपति अपने पूरे माल को उसके मूल्य के बराबर क़ीमत पर बेचने में सफल रहा, तो इसका अर्थ होगा कि उसके पास मूल निवेश से बेशी रु. 400 बेशी मूल्य के रूप में आये। मान लें कि इसमें से रु. 100 वह अपनी आमदनी के रूप में रखता है और रु. 300 को वह वापस पूँजी में तब्दील कर निवेश करता है। इसका अर्थ होगा कि अगले चक्र में वह रु. 900 का निवेश करेगा। यदि पूँजी का आवयविक संघटन समान रहता है, जैसा कि फिलहाल हमने माना है, तो इसका अर्थ होगा कि पूँजी संचय के बाद निवेशित इस पूँजी में भी स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी का अनुपात वही रहेगा जो पहले था, यानी 2:1। यानी, इस रु. 900 की पूँजी में से रु. 600 स्थिर पूँजी के रूप में लगेंगे जबकि रु. 300 परिवर्तनशील पूँजी के रूप में। ज़ाहिर है, पूँजी का आवयविक संघटन समान रहने पर यही हो सकता है। यदि पूँजीपति पहले 20 मशीनें चलवा रहा था जिन्हें चलाने के लिए 60 मज़दूरों की आवश्यकता थी, यानी प्रति मज़दूर मशीनों की संख्या 1/3 थी, या प्रति मशीन मज़दूरों की संख्या 3 थी, तो पूँजीपति द्वारा पूँजी संचय के बाद 30 मशीनें लगवाने पर मज़दूरों की संख्या भी उसे बढ़ाकर 90 करनी होगी। यानी तकनीकी संघटन व मूल्य-संघटन समान रहने पर, यानी पूँजी के आवयविक संघटन के समान रहने पर, जिस अनुपात में उत्पादन के साधनों को बढ़ाया जायेगा, यानी जिस अनुपात में स्थिर पूँजी को बढ़ाया जायेगा, उसी अनुपात में श्रमशक्ति को भी बढ़ाना होगा, यानी मज़दूरों की संख्या को भी बढ़ाना होगा। ज़ाहिर है, यहाँ हम मानकर चल रहे हैं कि मज़दूरी की दर पहले के समान है और उत्पादन के साधनों की क़ीमत भी पहले के समान है।

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि पूँजी का आवयविक संघटन समान रहता है, तो पूँजी संचय व विस्तारित पुनरुत्पादन होने पर श्रमशक्ति की माँग भी उसी अनुपात में बढ़ेगी, जिस अनुपात में पूँजी संचय होगा। हम जानते हैं कि सामान्य स्थितियों में पूँजी का संचय होना एक आम नियम है। हर वर्ष निवेशित पूँजी की मात्रा में मन्दी या संकट के दौरों को छोड़कर आम तौर पर वृद्धि होती ही है। यह वृद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि बेशी मूल्य को किस अनुपात में आमदनी और पूँजी में विभाजित किया जाता है। स्वयं यह अनुपात इस बात पर निर्भर करता है कि मुनाफ़े की औसत दर क्या है। इसके अलावा, कुछ बाह्य कारक भी होते हैं जिसके कारण यह अनुपात बदल सकता है, मसलन, नयी उत्पादन शाखाओं का पैदा होना, नये बाज़ारों का उपलब्ध होना, आदि। ऐसे में, पूँजी के संचय में एक ऐसी दर से वृद्धि जारी रह सकती है और वह श्रमशक्ति की माँग में एक ऐसी दर से वृद्धि कर सकती है, जो कि श्रमशक्ति की आपूर्ति की दर से आगे निकल जाये। यदि ऐसा होगा तो श्रमशक्ति की क़ीमत में बढ़ोत्तरी होगी और वह उसके मूल्य से ज़्यादा भी हो सकती है। मार्क्स लिखते हैं:

> "वे कमोबेश अनुकूल परिस्थितियाँ जिसमें उजरती मज़दूर अपना जीविकोपार्जन करते हैं और अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं किसी भी रूप में पूँजीवादी उत्पादन के बुनियादी चरित्र को नहीं बदलता है। जिस प्रकार साधारण पुनरुत्पादन लगातार पूँजी-सम्बन्ध को पुनरुत्पादित करना है, यानी एक ओर पूँजीपतियों की और दूसरी ओर उजरती मज़दूरों की मौजूदगी को पुनरुत्पादित करता है, उसी प्रकार विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन, यानी संचय, पूँजी-सम्बन्ध को विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादित करता है, यानी एक छोर पर अधिक या ज़्यादा बड़े पूँजीपति, और दूसरे छोर पर अधिक उजरती मज़दूर। श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन, जो पूँजी के मूल्य-संवर्द्धन के ज़रिये के रूप में पूँजी में लगातार निगमित होता रहता है, जो पूँजी से मुक्त नहीं हो सकता, और पूँजी के प्रति जिसकी दासता केवल उन अलग-अलग पूँजीपतियों के वैविध्य के पीछे छिपी होती है, जिन्हें यह श्रमशक्ति स्वयं को बेचती है, वास्तव में, पूँजी के पुनरुत्पादन में स्वयं एक कारक होता है। इसलिए पूँजी का संचय सर्वहारा वर्ग की तादाद में बढ़ोत्तरी होता है।" (मार्क्स, कार्ल. 1982. *पूँजी, खण्ड-1,* पेंगुइन बुक्स, पृ. 763-64)

जैसा कि मार्क्स कहते हैं, पूँजी संचय का अर्थ है सर्वहारा वर्ग के आकार में बढ़ोत्तरी। लेकिन इस बात को एडम स्मिथ व डेविड रिकार्डो जैसे पूँजीवादी क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने दूसरे छोर तक खींच दिया। वे मानते थे कि संचित होने वाली पूँजी, यानी बेशी मूल्य का वह हिस्सा जो पूँजी में तब्दील किया जाता है, पूरी तरह से परिवर्तनशील पूँजी में तब्दील होती है। यानी, उसका इस्तेमाल पूरी तरह से नये मज़दूरों को काम पर रखने के लिए किया जाता है। ज़ाहिर है, यह कथन सही नहीं है। स्पष्ट है कि इस प्रकार का तर्क पूँजीवाद के पक्षपोषण का ज़रिया बन जायेगा क्योंकि इसके अनुसार यदि पूँजीपति मुनाफ़ा प्राप्त करता है, पूँजी का संचय करता है, तो श्रमशक्ति की माँग में निरन्तर निरपेक्ष वृद्धि होगी और वह औसत मज़दूरी को लगातार बढ़ायेगा और इस प्रकार पूँजीवादी विकास सर्वहारा वर्ग के हित में है। हम ऐतिहासिक अनुभव से जानते हैं कि वास्तव में ऐसा नहीं होता। स्मिथ और रिकार्डो के तर्क की बुनियादी ग़लती यह है कि वे पूँजी संचय को पूरी तरह से मज़दूरों के उपभोग के साथ समानार्थी बना देते हैं।

मार्क्स बताते हैं कि हमने फ़िलहाल यह माना है कि पूँजी का आवयविक संघटन समान रहता है। ऐसे में, निश्चय ही पूँजी संचय का अर्थ होगा कि संचित पूँजी का एक हिस्सा परिवर्तनशील पूँजी में अनिवार्यत: तब्दील होगा। नतीजतन, श्रमशक्ति की माँग में बढ़ोत्तरी होगी। इसके कारण, 'श्रम की क़ीमत' में, यानी मज़दूरी में बढ़ोत्तरी होगी। लेकिन

(पेज 18 पर जारी)

पूँजीवादी संचय का आम नियम

(पेज 17 से आगे)

इसका यह अर्थ नहीं है कि मज़दूरी में बढ़ोत्तरी निरन्तर जारी रह सकती है और वह उत्पादन में पैदा होने वाला नया मूल्य पूर्णत: मज़दूरी में तब्दील हो सकता है। वजह यह है कि यदि मज़दूरी इतनी बढ़ जाये कि मुनाफ़ा ही नगण्य हो जाये, तो पूँजीपति निवेश करेगा ही नहीं। पूँजीपति श्रमशक्ति अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए नहीं ख़रीदता है। वह श्रमशक्ति को इसलिए ख़रीदता है ताकि वह उसे उत्पादन में लगाकर अपनी पूँजी को बढ़ा सके, मुनाफ़ा अर्जित कर सके। यदि वह ऐसा कर ही नहीं पायेगा, तो वह उत्पादन में निवेश करेगा ही क्यों? इसलिए समान दर पर पूँजी संचय होने पर भी, यानी पूँजी का आवयविक संघटन समान रहने पर भी, दूसरे शब्दों में स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात के समान रहने पर भी, पूँजीवादी उत्पादन नियमत: पूँजी-सम्बन्ध को लगातार पुनरुत्पादित करता है। साधारण पुनरुत्पादन में भी पूँजी-सम्बन्ध उत्पादन की प्रक्रिया में ही पुनरुत्पादित होता था। यानी पूँजीपति वर्ग पूँजीवादी वर्ग के रूप में पुनरुत्पादित होता था और मज़दूर वर्ग मज़दूर वर्ग के रूप में पुनरुत्पादित होता था; पूँजीपति पूँजीपति बना रहता था और मज़दूर मज़दूर बना रहता था। पूँजी संचय की स्थिति में, यानी विस्तारित पुनरुत्पादन की स्थिति में पूँजी-सम्बन्ध और विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादित होता है। यानी, एक ओर मज़दूर वर्ग का आकार बढ़ता जाता है, वहीं दूसरी छोर पर पूँजीपतियों की संख्या और/या पूँजीपतियों की पूँजी का आकार बड़ा होता जाता है। पूँजीवादी उत्पादन अपनी नैसर्गिक गति से मज़दूर वर्ग को भी बढ़ाता जाता है।

यदि पूँजी संचय समान दर पर होता है, यानी पूँजी का आवयविक संघटन समान बना रहता है, तो बस इतना कहा जा सकता है कि मज़दूर वर्ग के लिए स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर होती है। ऐसे में, पूँजी पर उनकी "उदारवादी निर्भरता" (liberal dependence), जिसकी पूँजीपति वर्ग के बुद्धिजीवी निरन्तर बात किया करते हैं, वे ज़्यादा आसान, सहनीय और उदार रूप ग्रहण करती है। पूँजी के निरन्तर जारी संचय के साथ यह पूँजी-सम्बन्ध, यानी श्रमशक्ति को पूँजीपति को बेचने की मज़दूर की बाध्यता का सम्बन्ध, अधिक सघन रूप के बजाय अधिक व्यापक रूप लेता जाता है। यानी, वह समान सघनता के साथ विस्तारित होता जाता है। शोषण की दर में अन्तर नहीं आता है, बल्कि पूँजी के प्रभुत्व और शोषण का दायरा विस्तारित होता जाता है और वह पहले से ज़्यादा बड़ी मज़दूर आबादी को अपने भीतर समेटता है। यदि यह प्रक्रिया जारी रहती है तो मज़दूर द्वारा पैदा बेशी उत्पाद का बड़ा हिस्सा उसके पास मज़दूरी के रूप में वापस आता है। इस प्रकार वह मज़दूर को बेहतर जीवन-स्तर दे सकता है, आनन्द और जीविका के अधिक साधन दे सकता है और यहाँ तक कि थोड़ी-बहुत बचत करने की इजाज़त भी दे सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इससे पूँजी-सम्बन्ध किसी भी रूप में समाप्त होता है, या शोषण समाप्त होता है। समान स्तर व दर पर पूँजी संचय का केवल इतना अर्थ होता है कि वह सोने की ज़ंजीर पहले से कुछ लम्बी हो जाती है, जिसके ज़रिये मज़दूर पूँजी से बँधा होता है। मार्क्स बताते हैं कि इस सवाल पर पूँजीवादी क्लासिकीय अर्थशास्त्रियों का बड़ा हिस्सा जो ग़लती करता है वह यह है कि वह भूल जाता है कि पूँजीवादी उत्पादन पद्धति की बुनियादी चारित्रिक अभिलाक्षणिकता क्या है। यह है श्रमशक्ति को ख़रीदकर उजरती श्रम का शोषण कर मुनाफ़ा अर्जित करना। यानी मज़दूरी के बदले में श्रमशक्ति को ख़रीदने के पूँजीवादी सम्बन्ध में यह अन्तर्निहित है कि मज़दूर अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य को तो पूँजी के रूप में पुनरुत्पादित करेगा ही, बल्कि उसके ऊपर वह मुफ़्त में बेशी श्रम देकर बेशी मूल्य भी पैदा करेगा, जिसके बदले में पूँजीपति को मज़दूर को कुछ भी नहीं देना होता है। *पूँजी द्वारा श्रमशक्ति की ख़रीद की यह बुनियादी पूर्वशर्त है।* यदि मज़दूरी में बढ़ोत्तरी एक ऐसी सीमा पर पहुँच जाये, जहाँ यह पूर्वशर्त ही क़ायदे से पूरी न हो, तो पूँजीपति उत्पादन में निवेश करेगा ही नहीं। मार्क्स लिखते हैं:

"इस व्यवस्था में श्रमशक्ति को ख़रीदार की व्यक्तिगत आवश्यकताएँ पूरा करने के लिए नहीं ख़रीदा जाता है, चाहे वह श्रमशक्ति द्वारा प्रदत्त सेवा के ज़रिये हो या फिर उसके उत्पाद के ज़रिये। ख़रीदार का लक्ष्य होता है अपनी पूँजी का मूल्य-संवर्द्धन करना, ऐसे मालों का उत्पादन करना जिनमें निहित श्रम की मात्रा उस श्रम से ज़्यादा हो जिसका उसने भुगतान किया है, और इसलिए उसमें मूल्य का एक ऐसा हिस्सा हो जिसके बदले में उसे कुछ भी नहीं भुगतान करना पड़ा और फिर भी जो इन मालों की बिक्री के ज़रिये उसके पास वास्तवीकृत होती है। बेशी मूल्य का उत्पादन, या मुनाफ़ा बनाना, इस उत्पादन पद्धति का निरपेक्ष नियम है। श्रमशक्ति केवल उसी हद तक बिक सकती है जिस हद तक वह उत्पादन के साधनों को पूँजी के रूप में संरक्षित करती है और क़ायम रखती है, जिस हद तक वह स्वयं अपने मूल्य का पूँजी के रूप में पुनरुत्पादन करती है और जिस हद तक वह मुफ़्त दिये गये श्रम के रूप में अतिरिक्त पूँजी का स्रोत प्रदान करती है। इसकी बिक्री की स्थितियों में, चाहे वे मज़दूर के लिए ज़्यादा अनुकूल हों या कम, निरन्तर पुन:बिक्री की अनिवार्यता, और समृद्धि का लगातार पूँजी के रूप में विस्तारित पुनरुत्पादन शामिल होता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, मज़दूरी की प्रकृति से ही उसका अर्थ है कि मज़दूर हमेशा मुफ़्त में कुछ श्रम देगा। अगर हम श्रम की क़ीमत में गिरावट के साथ मज़दूरी में होने वाली बढ़ोत्तरी के मामले को छोड़ भी दें, तो यह स्पष्ट है कि मज़दूरी में बढ़ोत्तरी के सबसे अच्छे दिनों का अर्थ भी केवल उसे मुफ़्त में दिये जाने वाले श्रम की मात्रा में परिमाणात्मक कमी ही होता है, जो मज़दूर देता है। यह कमी कभी इतनी दूर नहीं जा सकती कि वह समूची व्यवस्था के लिए ही ख़तरा बन जाये।" (*वही,* पृ. 769-70)

मार्क्स बताते हैं कि श्रमशक्ति की माँग बढ़ते रहने के फलस्वरूप मज़दूरी तब तक ही बढ़ सकती है, जब तक कि यह पूँजी के संचय को बाधित नहीं करती है। नये मूल्य में मज़दूरी का हिस्सा बढ़ना, यानी बेशी श्रम का हिस्सा कम होना और अनिवार्य श्रम का हिस्सा बढ़ना, तब तक जारी रह सकता है, जब तक कि वह संचय की प्रगति को ही बाधित न कर दे। यदि संचय की प्रगति ही बाधित होने लगती है, यानी संचय की दर अगर मज़दूरी के बढ़ने की वजह से बेहद कम हो जाती है, तो फिर संचय की गति कम होने का मूल कारण ही ग़ायब होने लगता है। क्योंकि जब मुनाफ़े की दर बेहद कम हो जाती है और स्वयं पूँजी संचय ही मज़दूरी के बढ़ने की वजह से बाधित हो जाता है, तो पूँजी निवेश की दर भी घटने लगती है। पूँजीपति जिस कारण से पूँजी निवेश को बढ़ाने के लिए बेशी मूल्य को पूँजी में तब्दील करते हैं, वही ग़ायब हो जाता है। नतीजतन, श्रमशक्ति की माँग घटने लगती है और मज़दूरी में गिरावट आने लगती है। पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया संचय के रास्ते में आने वाली उन बाधाओं को स्वयं ही दूर भी करती रहती है, जिन्हें वह पैदा करती है। 'श्रम की क़ीमत', यानी मज़दूरी फिर से उस स्तर पर पहुँच जाती है, जो पूँजी संचय की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक होती है। *यानी वास्तव में यह पूँजी का आधिक्य होता है जो शोषण के लिए उपलब्ध श्रमशक्ति यानी काम करने वाली मज़दूर आबादी में बढ़ोत्तरी की दर को कम करता है, न कि मज़दूर आबादी में वृद्धि की दर में कमी पूँजी के आधिक्य को पैदा करती है। उसी प्रकार यह पूँजी की कमी होती है जो उपलब्ध मज़दूर आबादी के आकार को सापेक्षिक रूप से बढ़ा देती है, न कि मज़दूर आबादी में बढ़ोत्तरी पूँजी की कमी को पैदा करती है।* दूसरे शब्दों में, यह पूँजी के संचय की निरपेक्ष गति है जो शोषण हेतु उपलब्ध श्रमशक्ति के भण्डार की गति को निर्धारित करती है, न कि इसके विपरीत। पूँजी संचय की गति इसमें स्वतन्त्र कारक है, जब कि श्रमशक्ति का उपलब्ध भण्डार व मज़दूरी की दर निर्भर कारक हैं। मज़दूरों की बेशी आबादी हर सूरत में सापेक्षिक रूप से बेशी आबादी होती है, यानी पूँजी संचय की दर की तुलना में ही वह बेशी आबादी होती है। उसी प्रकार, मज़दूरों की कमी, यानी श्रमशक्ति की कमी भी स्वयं पूँजी संचय की दर की तुलना में ही कमी होती है, निरपेक्ष रूप में नहीं। मार्क्स समान दर पर पूँजी संचय की स्थिति में श्रमशक्ति की माँग व मज़दूरी की दर में आने वाले परिवर्तनों को लेकर पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा पैदा किये गये भ्रमों का खण्डन करते हुए लिखते हैं:

"पूँजीवादी उत्पादन का नियम जो वास्तव में तथाकथित 'जनसंख्या के प्राकृतिक नियम' की बुनियाद में मौजूद है उसे सरलता के साथ इस रूप में समझाया जा सकता है: पूँजी, संचय और मज़दूरी की दर के बीच सम्बन्ध और कुछ नहीं है बल्कि मुफ़्त में दिये गये श्रम, जिसे कि पूँजी में तब्दील कर दिया गया है, और भुगतान के बदले दिये गये उस श्रम के बीच सम्बन्ध है, जो इस अतिरिक्त पूँजी को गतिमान बनाने के लिए आवश्यक होता है। इसलिए पूँजी के परिमाण और काम करने वाली आबादी की संख्या के बीच का सम्बन्ध किसी भी रूप में ऐसे दो परिमाणों के बीच सम्बन्ध नहीं है जो एक दूसरे से पूर्णत: स्वतन्त्र हों; उल्टे, असल में, यह उसी काम करने वाली आबादी के मुफ़्त दिये गये श्रम और भुगतान के बदले दिये गये श्रम के बीच का सम्बन्ध मात्र है। अगर मज़दूर वर्ग द्वारा मुफ़्त में दिया गया, और पूँजीपति वर्ग द्वारा संचित किया गया, श्रम इतनी तेज़ी से बढ़ता है कि इसे पूँजी में रूपान्तरित किये जाने के लिए मज़दूरी के बदले दिये गये श्रम में असाधारण बढ़ोत्तरी की आवश्यकता पड़ती है, तो मज़दूरी बढ़ती है, और अन्य स्थितियों के समान रहने पर, मुफ़्त में दिया गया श्रम उसी अनुपात में घटता है। लेकिन जैसे ही यह कमी उस बिन्दु को छूती है जहाँ पूँजी का पोषण करने वाले बेशी श्रम की सामान्य मात्रा में आपूर्ति नहीं होती, वैसे ही एक प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है: आमदनी के छोटे हिस्से को पूँजी में तब्दील किया जाता है और संचय की गति कम हो जाती है, और मज़दूरी में बढ़ोत्तरी की गति एक बाधा का सामना करती है। इसलिए मज़दूरी में बढ़ोत्तरी उन सीमाओं के भीतर ही रहती है जो न केवल पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियाद को क़ायम रखती हैं, बल्कि बढ़ते पैमाने पर इसके पुनरुत्पादन को भी सुनिश्चित करती हैं। पूँजीवादी संचय के नियम को, जिसे अर्थशास्त्रियों ने रहस्यीकृत कर प्रकृति के तथाकथित नियम में तब्दील कर दिया है, वास्तव में इस स्थिति को अभिव्यक्त करती है कि संचय की प्रकृति ही श्रम के शोषण की दर में कमी को और श्रम की क़ीमत में ऐसी हर वृद्धि को असम्भव बनाती है, जो लगातार पहले से बड़े स्तर पर, पूँजी-सम्बन्ध के निरन्तर पुनरुत्पादन को गम्भीर रूप से जोखिम में डालती है। एक ऐसी उत्पादन पद्धति में और कुछ हो भी नहीं सकता है जिसमें मज़दूर अस्तित्वमान ही इसलिए रहता है कि वह पहले से अस्तित्वमान मूल्यों के मूल्य संवर्द्धन को अंजाम दे, उस स्थिति के ठीक विपरीत, जिसमें वस्तुगत सम्पदा मज़दूर की विकास की अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए अस्तित्वमान रहती है। ठीक उसी प्रकार, जैसे धर्म में मनुष्य अपने ही मस्तिष्क के उत्पादों से शासित होता है, वैसे ही, पूँजीवादी उत्पादन में, वह अपने हाथों के उत्पादों से शासित होता है।" (*वही,* पृ. 771-72)

पूँजी के बढ़ते आवयविक संघटन के साथ पूँजी संचय

मार्क्स बताते हैं कि समान स्तर पर पूँजी का संचय पूँजीवादी व्यवस्था का आम नियम नहीं होता है। दो कारणों से पूँजीवादी उत्पादन में पूँजी का आवयविक संघटन अनिवार्यत: बढ़ता है। पहला है पूँजीपतियों के बीच की प्रतिस्पर्द्धा और दूसरा है पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के बीच का संघर्ष। पूँजीपतियों के बीच की आपसी प्रतिस्पर्द्धा क्यों होती है? उनके बीच प्रतिस्पर्द्धा होती है अपने माल के उत्पादन की लागत को कम-से-कम करना ताकि अपने प्रतिस्पर्द्धी को क़ीमतों को कम करने की प्रतिस्पर्द्धा में हराया जा सके। लागत कम तभी की जा सकती है जब श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया जाये। श्रम की उत्पादकता को तभी बढ़ाया जा सकता है जब उत्पादन के पैमाने में विस्तार किया जाय और उन्नत तकनोलॉजी व मशीनों पर निवेश को बढ़ाया जाये। वहीं मज़दूर वर्ग से पूँजीपति वर्ग का संघर्ष पूँजीपति वर्ग को श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने वाली मशीनें व तकनोलॉजी को लगाने को बाध्य करता है, क्योंकि उसे मज़दूरों के जीवित श्रम पर अपनी निर्भरता को कम कर मज़दूरों की मोलभाव की क्षमता को कम करना होता है। *इन दो अन्तरविरोधों के कारण पूँजीवादी उत्पादन में पूँजी के आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी एक आम नियम है।*

श्रम की उत्पादकता के बढ़ने का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि उत्पादन के साधनों की मात्रा और उनका प्रचालन करने और उत्पादक उपभोग करने वाले मज़दूरों की संख्या के अनुपात में परिवर्तन। दूसरे शब्दों में, पूँजी के तकनीकी संघटन में बदलाव। श्रम की उत्पादकता बढ़ने का अर्थ यह है कि किसी भी दी गयी अवधि में मज़दूरों द्वारा उत्पादित माल में परिवर्तित किये जाने वाले उत्पादन के साधनों की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। कुछ उत्पादन के साधनों की मात्रा में वृद्धि श्रम की उत्पादकता के बढ़ने की पूर्वशर्त होता है, मसलन, मशीनें व श्रम के अन्य उपकरण आदि, जबकि कुछ

(पेज 19 पर जारी)

पूँजीवादी संचय का आम नियम

(पेज 18 से आगे)

अन्य उत्पादन के साधनों की मात्रा में वृद्धि श्रम की उत्पादकता के बढ़ने का परिणाम होता है, मसलन, कच्चा माल व सहायक सामग्री। चाहे यह वृद्धि श्रम की उत्पादकता के बढ़ने की शर्त हो या फिर उसका नतीजा, इतना स्पष्ट है कि श्रमशक्ति की मात्रा की तुलना में उत्पादन के साधनों की बढ़ती मात्रा श्रम की बढ़ती उत्पादकता की अभिव्यक्ति होता है। इस प्रकार श्रम की उत्पादकता में वृद्धि हमेशा उत्पादन में श्रमशक्ति की मात्रा की तुलना में उत्पादन के साधनों की बढ़ती मात्रा में अभिव्यक्त होती है। यानी, प्रति मज़दूर उत्पादन के साधनों की मात्रा में वृद्धि होती है। इसे ही हम पूँजी का बढ़ता तकनीकी संघटन कहते हैं।

यह तकनीकी संघटन जिस दर से बढ़ता है, पूँजी का मूल्य-संघटन ठीक उसी रफ़्तार से नहीं बढ़ता है। कारण यह है कि श्रम की बढ़ती उत्पादकता के साथ स्वयं उत्पादन के साधनों के उत्पादन की लागत भी कम होती है और उनकी क़ीमतों में भी गिरावट आती है। नतीजतन, जिस रफ़्तार से पूँजी का तकनीकी संघटन, यानी उत्पादन के साधनों की मात्रा और श्रमशक्ति की मात्रा का भौतिक अनुपात बदलता है, पूँजी का मूल्य-संघटन ठीक उसी रफ़्तार से नहीं बदलता है, क्योंकि मशीनें व उत्पादन के अन्य साधन भी सभी मालों के समान श्रम की उत्पादकता में आम बढ़ोत्तरी के कारण सस्ते होते रहते हैं। मार्क्स इंग्लैण्ड में कताई उद्योग का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि अट्ठारहवीं सदी की शुरुआत में इसमें स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी का अनुपात 1:1 था। 'पूँजी' के पहले खण्ड के लेखन के समय तक यह अनुपाता 7:1 हो चुका था। लेकिन तकनीकी संघटन की बात करें, तो वह इससे कई गुना ज़्यादा बढ़ गया था। मार्क्स बताते हैं कि डेढ़ सदी के भीतर ही तकनीकी संघटन 100 गुना ज़्यादा बढ़ चुका था, जबकि मूल्य-संघटन केवल 7 गुना बढ़ा था।

मार्क्स बताते हैं कि पूँजी के आवयविक संघटन में वृद्धि पूँजीवादी उत्पादन का आम नियम है। इसे हम हर युग में तमाम मालों की क़ीमतों को उनके संघटक तत्वों में तोड़कर समझ सकते हैं। जब हम अलग-अलग दौर में मालों के मूल्य में उत्पादन के साधनों द्वारा स्थानान्तरित मूल्य (यानी कच्चे मालों, सहायक मालों का मूल्य और मशीनों, इमारतों, आदि अचल पूँजी के तत्वों का घिसाई मूल्य) और नये उत्पादित मूल्य (यानी मज़दूरी के बराबर मूल्य तथा उसके ऊपर मज़दूरों के बेशी श्रम द्वारा पैदा बेशी मूल्य) के अनुपात को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि उत्पादन के साधनों द्वारा स्थानान्तरित मूल्य की सापेक्षिक मात्रा मालों की क़ीमत में बढ़ रही है। यह अपने आप में श्रम की बढ़ती उत्पादकता का ही एक लक्षण या चिह्न होता है। लेकिन पूँजी के बढ़ते आवयविक संघटन का यह अर्थ नहीं होता है कि परिवर्तनशील पूँजी अनिवार्यत: निरपेक्ष रूप से कम हो जाती है। कुल निवेशित पूँजी में स्थिर पूँजी के सापेक्ष उसकी मात्रा कम होती है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि निरपेक्ष रूप से वह कम हो जाये। यदि पूँजी के आवयविक संघटन में वृद्धि की दर से ज़्यादा तेज़ दर से पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन हो रहा है, तो सापेक्षिक रूप से कम होने के बावजूद परिवर्तनशील पूँजी और उसके द्वारा ख़रीदी गयी श्रमशक्ति की मात्रा, यानी उसके द्वारा काम पर रखे गये मज़दूरों की संख्या में भी, निरपेक्ष रूप से बढ़ोत्तरी हो सकती है। मिसाल के तौर पर, मान लें कि पहले किसी पूँजीपति द्वारा लगायी गयी पूँजी का आवयविक संघटन 1:1 था। बाद में, यह बढ़कर 3:1 हो गया। इसका यह अर्थ हुआ कि सापेक्षिक रूप से परिवर्तनशील पूँजी स्थिर पूँजी की तुलना में कम हो गयी। लेकिन मान लें कि पहले लगायी गयी कुल पूँजी थी रु. 1000, जिसमें से 1:1 के आवयविक संघटन के अनुसार, रु. 500 स्थिर पूँजी के रूप में लगाये गये थे और बाकी रु. 500 परिवर्तनशील पूँजी के रूप में लगाये गये थे। मान लें कि बाद में कुल लगायी गयी पूँजी रु. 4000 हो गयी। ऐसे में, 3:1 के आवयविक संघटन के अनुसार स्थिर पूँजी हुई रु. 3000 जबकि परिवर्तनशील पूँजी हुई रु. 1000। जैसा कि हम देख सकते हैं, पूँजी का आवयविक संघटन बढ़ने के बावजूद परिवर्तनशील पूँजी की मात्रा में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी हुई, हालाँकि स्थिर पूँजी के सापेक्ष उसमें कमी आयी।

श्रम की उत्पादकता में होने वाली हर बढ़ोत्तरी श्रम की सामाजिक शक्ति का ही परिणाम होता है। बड़े पैमाने के उत्पादन में कई श्रमिकों के साथ आने से पैदा होने वाले सामाजिक प्रभाव और उनके सहकार व श्रम के विभाजन के विकास के साथ मशीनीकरण का सम्भव होना ही वे कारक हैं जो कि श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने वाले सभी उत्पादन के साधनों व तकनोलॉजी को पैदा करते हैं। निश्चय ही, इसमें मानसिक श्रमिकों की भी भूमिका होती है। लेकिन सामाजिक उत्पादन में श्रम की सामूहिक शक्ति के बिना श्रम की उत्पादकता में कोई विचारणीय उन्नति सम्भव नहीं है। मार्क्स बताते हैं कि माल उत्पादन की व्यवस्था में श्रम की उत्पादकता में तरक्की पूँजीवादी माल उत्पादन के साथ ही सम्भव होती है, जिसकी पूर्वशर्त होती है कि कुछ व्यक्तिगत माल उत्पादकों के पास पूँजी का एक ऐसा शुरुआती संचय हो जिसका निवेश कर उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति को ख़रीदा जा सके और वहीं दूसरी ओर माल उत्पादकों के व्यापक जनसमुदायों को उत्पादन व जीविका/उपभोग के साधनों से वंचित कर दिया गया हो, ताकि वे अपनी श्रमशक्ति बेचने को मजबूर हो जायें। इस शुरुआती क़दम के बिना पूँजी-सम्बन्ध का स्थापित होना सम्भव नहीं है। इसे ही मार्क्स **आदिम संचय (primitive accumulation)** की संज्ञा देते हैं, जिसके बारे में हम अगले अध्याय में चर्चा करेंगे। लेकिन इतना स्पष्ट है कि सामाजिक तौर पर पूँजीवादी उत्पादन इसके साथ ही सम्भव होता है। इसके साथ ही श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, जो बेशी मूल्य के उत्पादन को बढ़ाता है और साथ ही पूँजी संचय को बढ़ाता है और यही बढ़ा हुआ पूँजी संचय वापस श्रम की उत्पादकता को और भी बढ़ाता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "इस प्रकार, अगर पूँजी के संचय का एक निश्चित स्तर विशिष्ट रूप से पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के लिए एक पूर्वशर्त प्रतीत होता है, तो विशिष्ट रूप में पूँजीवादी उत्पादन पद्धति भी पलटकर पूँजी के त्वरित संचय का कारण बनती है। इसलिए, पूँजी के संचय के साथ विशिष्ट रूप से पूँजीवादी उत्पादन पद्धति विकसित होती है और विशिष्ट रूप से पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के साथ पूँजी का संचय विकसित होता है। ये दो आर्थिक कारक, उन प्रेरणों के यौगिक अनुपात में जो ये एक-दूसरे को देते हैं, पूँजी के तकनीकी संघटन में वह परिवर्तन लाते हैं जिसके फलस्वरूप पूँजी का परिवर्तनशील अंग उसके स्थिर अंग की तुलना में छोटा से छोटा होता जाता है।" *(वही,* पृ. 776)

बढ़ते आवयविक संघटन के साथ पूँजी संचय का परिणाम यह होता है कि श्रमशक्ति की माँग में सापेक्षिक गिरावट आती है। यह माँग स्थिरता या मन्दी के दौर में श्रमशक्ति की माँग में निरपेक्ष गिरावट भी ला सकती है, जबकि तेज़ी और समृद्धि के दौर में बढ़ते आवयविक संघटन के बावजूद श्रमशक्ति की माँग और इसलिए रोज़गार की दर में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी भी हो सकती है। पूँजी संचय की जारी प्रक्रिया ही पूँजी के सान्द्रण और संकेन्द्रण (concentration and centralization of capital) को पैदा करती है। पूँजी के सान्द्रण ओर संकेन्द्रण का नतीजा यह होता है कि पूँजी का आवयविक संघटन और भी तेज़ गति से बढ़ता है। कुल सामाजिक पूँजी का बड़े से बड़ा हिस्सा उत्पादन के साधनों पर लगता है और सापेक्षिक रूप से छोटा होता हुआ हिस्सा श्रमशक्ति पर ख़र्च होता है। पूँजी संचय के एक आम परिणाम के रूप में पूँजी के सान्द्रण और संकेन्द्रण को गहराई से समझना यहाँ अपरिहार्य है क्योंकि पूँजी संचय का यह आम परिणाम आगे चलकर इजारेदार पूँजीवाद की मंज़िल को जन्म देता है।

पूँजी का सान्द्रण और संकेन्द्रण

पूँजी का सान्द्रण और संकेन्द्रण पूँजी के संचय से पैदा होने वाले नैसर्गिक नतीजे हैं। हर पूँजी अपने आप में उत्पादन के साधनों का एक सान्द्रण होती है और यह सान्द्रण जिस प्रकार और जितना बड़ा होता है, वह पूँजी उसके अनुरूप ही श्रमशक्ति की एक निश्चित मात्रा पर नियन्त्रण रखती है। दूसरे शब्दों में, पूँजीपति के पास जिस प्रकार के और जिस पैमाने पर उत्पादन के साधनों का स्वामित्व होता है, वह उसके अनुपात में ही मज़दूरों की संख्या को काम पर रख सकता है। सामान्य परिस्थितियों में उत्पादन के हर चक्र में पूँजीपति बेशी मूल्य के एक हिस्से को संचित कर पूँजी में तब्दील करता है। इसके साथ, उसके स्वामित्व के मातहत उत्पादन के साधन उन्नत होते हैं, उनकी मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है और उत्पादन का पैमाना विस्तारित होता है। अलग-अलग पूँजीपतियों के पास पूँजी संचय के ज़रिये पूँजी की मात्रा में बढ़ोत्तरी को हम पूँजी का सान्द्रण (concentration of capital) कहते हैं। इस सान्द्रण के साथ पूँजी संचय की दर और मात्रा को बढ़ाने की ज़मीन भी तैयार होती है। जैसा कि मार्क्स कहते हैं, "हर संचय नये संचय का ज़रिया बनता है।" (वही, पृ. 776) जैसे-जैसे पूँजी संचय आगे बढ़ता है, वह अलग-अलग पूँजीपतियों के हाथों में पहले से ज़्यादा उत्पादन के साधनों को केन्द्रित करता है, सामाजिक सम्पदा के उन हिस्सों को भी पूँजी में तब्दील करता है जो अब तक पूँजी में तब्दील नहीं हुए थे, उत्पादन का पहले से ज़्यादा बड़े पैमाने पर समाजीकरण करता है, श्रम की उत्पादकता में पहले से तीव्र गति से वृद्धि करता है और पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के क्षेत्र को विस्तारित करता जाता है। पूँजी के सान्द्रण के नतीजे के तौर पर अलग-अलग पूँजीपतियों के नियन्त्रण में उत्पादन के साधनों की मात्रा बढ़ती है। यह बढ़ोत्तरी समूची सामाजिक पूँजी में अलग-अलग पूँजीपतियों की पूँजी के हिस्से के अनुपात में ही होती है।

पूँजी के सान्द्रण की विपरीत गति भी पूँजीवादी व्यवस्था में मौजूद होती है। यह गति होती है पूँजियों के टूटने की और एक-दूसरे को विकर्षित करने की। मिसाल के तौर पर, पूँजीवादी घरानों या कम्पनियों को टूट जाना। उत्तराधिकारियों के बीच पूँजीवादी घरानों की सम्पत्ति का बँट जाना इसमें एक अहम कारक होता है। मिसाल के तौर पर, धीरूभाई अम्बानी के पूँजीवादी साम्राज्य का उसके दोनों बेटों के बीच विभाजित हो जाना, या इसी प्रकार घनश्यामदास बिड़ला के उत्तराधिकारियों में उसकी सम्पत्ति का बँट जाना, इसी के उदाहरण हैं। इस प्रकार, एक ओर सान्द्रण के ज़रिये अलग-अलग पूँजियाँ आकार में बड़ी होती जाती हैं, तो वहीं दूसरी ओर, इसके उलट, तमाम पूँजीवादी कम्पनियाँ या घराने अलग-अलग कारणों से टूटते भी रहते हैं। इसके अलावा, नये पूँजीपति भी पैदा होते रहते हैं, कई बार उत्पादन की पुरानी शाखाओं में तो कभी उत्पादन की नयी पैदा होने वाली शाखाओं में। नतीजतन, पूँजी के संचय और उसके फलस्वरूप होने वाले सान्द्रण के ज़रिये समाज में पूँजियों की संख्या कम या ज़्यादा गति से बढ़ती रहती है। एक ओर पूँजी का सान्द्रण पूँजियों का आकार बढ़ाता है, तो वहीं पूँजियों का टूटना और नयी पूँजियों का पैदा होना उनके आकार को तात्कालिक रूप से घटा भी देता है। मार्क्स इस द्वन्द्वात्मक गति का समाहार करते हुए लिखते हैं:

> "इसलिए संचय एक ओर अपने आपको उत्पादन के साधनों के बढ़ते सान्द्रण और श्रम पर बढ़ते नियन्त्रण के रूप में पेश करता है, और दूसरी ओर कई अलग-अलग पूँजियों के एक-दूसरे से विकर्षित होने के रूप में पेश करता है।" *(वही,* पृ. 776-77)

पूँजी के सान्द्रण के अलावा एक अन्य प्रक्रिया भी पूँजी संचय के ही परिणाम के रूप में जन्म लेती है। *यह प्रक्रिया है पूँजी का संकेन्द्रण।* पूँजी के संकेन्द्रण का अर्थ है कई-कई अलग-अलग पूँजियों का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त होना और उनके स्थान पर उनके मिल जाने से एक बड़ी पूँजी का निर्माण होना। व्यावहारिक तौर पर, यह प्रक्रिया दो प्रकार से पूरी होती है: एक ओर छोटी पूँजियों का बड़ी पूँजियों से प्रतिस्पर्द्धा में उजड़ना और उनके द्वारा निगल लिया जाना; दूसरा, होता है दो बड़ी पूँजियों का आपसी समझदारी बनाकर साथ में आना और किसी प्रकार के जॉइण्ट स्टॉक कम्पनी या ट्रस्ट का निर्माण कर लेना। *जिस भी प्रकार से हो, पूँजी के संकेन्द्रण का अर्थ अपने आप में समूची सामाजिक पूँजी की मात्रा में वृद्धि नहीं होता।* यह तमाम बिखरी हुई पूँजियों का साथ आना और पूँजी के केन्द्रों की संख्या का कम होना है। दूसरे शब्दों में, पूँजी के संकेन्द्रण का अर्थ है कुल सामाजिक पूँजी के वितरण में बदलाव आना। वह अब बहुत-से केन्द्रों पर विभाजित होने के बजाय पहले से कम केन्द्रों पर विभाजित होती है। पूँजी का सान्द्रण अलग-अलग पूँजीपतियों के पास पूँजी संचय के ज़रिये पूँजी की मात्रा के बढ़ने का प्रत्यक्ष परिणाम होता है। यह समूची सामाजिक पूँजी में बढ़ोत्तरी का द्योतक होता है। लेकिन पूँजी का संकेन्द्रण अपने आप में समूची सामाजिक पूँजी में वृद्धि नहीं करता और न ही वह इस वृद्धि का प्रत्यक्ष परिणाम होता है। यह पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपतियों के बीच मौजूद आपसी प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता कि पूँजी के संकेन्द्रण का पूँजी संचय की दर और परिणामत: होने वाले पूँजी के सान्द्रण पर कोई असर नहीं पड़ता है। पूँजी का संकेन्द्रण पूँजी के कहीं ज़्यादा बड़े केन्द्रों को जन्म देता है। इन बड़े पूँजीपतियों के पास उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने, उन्नत तकनोलॉजी व यन्त्रों का इस्तेमाल कर श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने की कहीं ज़्यादा क्षमता होती है। नतीजतन, पूँजी का केन्द्रीकरण सीधे सामाजिक पूँजी की मात्रा में अपने आप में वृद्धि नहीं करता है, लेकिन वह पहले से तेज़ रफ्तार से पूँजी के सान्द्रण और पूँजी संचय की ज़मीन ज़रूर तैयार करता है।

जैसे-जैसे पूँजीवादी उपक्रमों का आकार लगातार बढ़ती दर के साथ

(पेज 12 पर जारी)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

प्रज्वल रेवन्ना सेक्स काण्ड

“धर्मध्वजाधारी” और “संस्कारी” भाजपाइयों द्वारा बलात्कारियों को प्रश्रय और संरक्षण देने की मुहिम का हुआ पर्दाफ़ाश !

● वारुणी

शायद ही ऐसा कोई माह बीतता हो जब किसी बड़े भाजपाई नेता या उसके सहयोगी दलों के नेताओं का नाम स्त्री-विरोधी अपराधों में नहीं आता हो। भाजपा सरकार के पिछले 10 साल के कार्यकाल में बारम्बार इस प्रकार की घटनाएँ सामने आती रही हैं जिसमें कि ख़ुद भाजपा नेता ऐसे स्त्री-विरोधी अपराधों को अंजाम दे रहे हैं। दूसरी तरफ़, तमाम बलात्कारियों को संरक्षण और बढ़ावा देने के काम में भाजपा सरकार निरन्तर संलिप्त पायी जाती रही है।

लेकिन अभी कर्नाटक में जो यौन उत्पीड़न और बलात्कार के मामले सामने आये हैं उसकी वीभत्सता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कर्नाटक के हासन से वर्तमान जद (सेक्यु.) सांसद और भूतपूर्व प्रधानमन्त्री एचडी देवेगौड़ा के पोते प्रज्वल रेवन्ना ने क़रीब 2800 महिलाओं का न सिर्फ़ बलात्कार किया बल्कि अपने इन कुकृत्यों को रिकॉर्ड भी किया! ऐसे क़रीब 2976 वीडियो मौजूद हैं। यह वीडियो प्रज्वल ने इसलिए बनाये ताकि आगे इन महिलाओं को ब्लैकमेल कर सके। जिन महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया, उनमें से कई महिलाएँ ख़ुद इसी की पार्टी की सदस्य थीं और कई ग़रीब परिवारों से आती थीं, जो मदद के सिलसिले में इस दरिन्दे से मिलने पहुँची थीं। इसने राज्य की महिला अधिकारियों को भी अपनी हवस का शिकार बनाया है। जो वीडियो सामने आये हैं, उनमें उस स्तर की यौन हिंसा है, जिसका ज़िक्र तक नहीं किया जा सकता है! घटना के बाहर आने पर पता चला कि ये घिनौने कुकृत्य कई सालों से जारी थे।

रेवन्ना के कुकृत्यों की जानकारी भाजपा को दिसम्बर महीने से ही थी। ख़ुद इनके राज्य अध्यक्ष को पार्टी के ही देवराज गौड़ा ने पत्र लिखकर इसके कुकृत्यों के बारे में बताया था। लेकिन ऐसे बलात्कारियों को भाजपा गठबन्धन द्वारा न सिर्फ़ टिकट दिया गया बल्कि कर्नाटक के इस पोस्टर बॉय के प्रचार में ख़ुद प्रधानमन्त्री मोदी यह कहते नहीं थकते थे कि रेवन्ना को दिया गया हर वोट मोदी को दिया गया वोट है। यह एक मायने में सच ही है! मोदी के नेतृत्व में आने के पहले भी भाजपाइयों का चाल-चेहरा-चरित्र तो देश की जनता को पता चल ही गया था लेकिन मोदी के नेतृत्व में तो भाजपा और भाजपाइयों ने यौन-उत्पीड़न के सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिये हैं। घटना जब खुलकर सामने आयी तब मोदी ने इस विषय पर कई दिनों तक चुप्पी साधे रही। प्रधानमन्त्री मोदी को ख़ुद रेवन्ना के कुकृत्यों के बारे में सारी जानकारी थी, इसके बावजूद उसकी रैलियों में उसका समर्थन करने मोदी जी पहुँचते हैं। हालाँकि यह कोई पहली दफ़ा नहीं जब बलात्कारियों को भाजपा पार्टी द्वारा टिकट दिया जा रहा है या उनका बचाव किया जा रहा है। महिला पहलवानों के साथ यौन उत्पीड़न करने वाले भाजपा के नेता ब्रजभूषण शरण को पार्टी से निकालना तो दूर, उलटे उसके बेटे करण भूषण को भाजपा से लोकसभा सीट की टिकट देकर उसके बाप के कुकर्मों का ईनाम दिया गया है। भाजपा बलात्कारियों को पैदा करने और उनका संरक्षण करने में माहिर पार्टी है। ऐसे में रेवन्ना जैसा घटिया आदमी यदि एनडीए गठबन्धन का कर्नाटक में पोस्टर बॉय बना हुआ है, तो इसमें चकित होने की कोई बात नहीं है।

भाजपा सरकार के पिछले दस साल का इतिहास रहा है कि यह बलात्कारियों को मज़बूती प्रदान करने वाली पार्टी रही है। हर बार ही सिर उठाने वाले ऐसे तमाम मामले को सबसे पहले दबाया जाता है ताकि वह जनता के समक्ष ना आये। लेकिन ऐसे कुकृत्यों के पर्दाफ़ाश होने के बाद भाजपाइयों द्वारा बड़े बेशर्म और नंगे तरीक़े से इन बलात्कारियों को संरक्षण प्रदान किया जाता है। रेवन्ना के मामले में भी यही किया गया। वोटिंग के दिन तक इन्हीं सत्तासीन लोगों द्वारा रेवन्ना के कुकृत्यों पर पर्दा डालने का प्रयास किया गया। लेकिन, ठीक वोटिंग के बाद जब रेवन्ना के यौन अपराधों की वीडियो पेन ड्राइव के ज़रिये लीक हो गयी, तो पूरे राज्य में रेवन्ना को गिरफ़्तार करने की माँग उठने लगी। फ़िर बड़े शातिराना ढंग से रेवन्ना जैसे अपराधी को जर्मनी भागने की छूट दी गयी। अब जब प्रज्वल रेवन्ना जर्मनी भाग चुका है, तब राज्य की कांग्रेस सरकार ने आनन-फ़ानन में एसआईटी घटित कर मामले की जाँच शुरू की है। एसआईटी अपनी ख़ोजबीन में लगी हुई है। अभी कुछ दिन पहले इस मामले में एक महिला के ग़ायब होने के बाद उसके बेटे द्वारा प्रज्वल रेवन्ना के बाप एचडी रेवन्ना पर उसे अगवा करने का आरोप लगाया गया। इस सम्बन्ध में एसआईटी द्वारा एचडी रेवन्ना को गिरफ़्तार करवाया गया था, लेकिन बाद में उसे ज़मानत पर रिहा कर दिया गया। दूसरी तरफ़ इस मामले में शिकार हुई महिलाओं पर लगातार दवाब बनाया जा रहा है। हाल ही में उन महिलाओं की कई वीडियो को वायरल कर दिया गया है। इस मामले में भाजपा के नेता देवराज गौड़ा द्वारा इन वीडियो को लीक करने की बात सामने आ रही है। जब भाजपा नेता देवराज गौड़ा पर प्रज्वल रेवन्ना काण्ड में यौन शोषण के वीडियो लीक करने का आरोप सामने आया है, तब इस मामले में भाजपा के नेताओं द्वारा सीबीआई जाँच की माँग रखी जा रही है ताकि “निष्पक्ष जाँच” की जा सके! भाजपा की सत्ता में सीबीआई पर किस हद तक भरोसा किया जा सकता है, यह जगज़ाहिर है! दूसरी तरफ़ इसी मामले में केन्द्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष की विश्वसनीयता पर कई सवाल उठ रहे हैं। केन्द्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष (जोकि भाजपा से क़रीबी रखती हैं) द्वारा इस मामले में कोई कार्रवाई करना तो दूर उलटे उनके द्वारा यह घोषित किया जा रहा है कि ये सारे मामले फ़र्ज़ी हैं। यह जगज़ाहिर हो चुका है कि भाजपा पार्टी किस प्रकार तमाम पूँजीवादी जनवादी संस्थाओं को अन्दर से टेकओवर कर चुकी है और उसे धड़ल्ले से अपने राजनीतिक हितों के लिए इस्तेमाल कर रही है। फ़ासीवादी राज में न सिर्फ़ पुलिस और प्रशासन तन्त्र बल्कि आज महिला आयोग, कोर्ट-कचहरी, सीबीआई से लेकर तमाम संस्थाओं से कोई उम्मीद पालना मूर्खतापूर्ण बात होगी। फ़ासीवादी भाजपा पार्टी तमाम पूँजीवादी संस्थानों को अन्दर से टेकओवर कर चुकी है और उसका इस्तेमाल बलात्कारियों के संरक्षण समेत अपने तमाम राजनीतिक मंसूबों के लिए करती रही है। इसके कई उदहारण हमारे सामने मौजूद हैं।

यह कोई पहली बार नहीं हो रहा है जब बलात्कारियों को बचाने के लिए भाजपा राज्य मशीनरी के सारे अंग-उपांगों का इस्तेमाल कर रही हो। इसके पहले भी आसाराम बापू, डेरा सच्चा सौदा के राम रहीम, स्वामी नित्यानन्द, स्वामी चिन्मयानन्द, कुलदीप सिंह सेंगर आदि को बचाने के लिये फ़ासीवादी भाजपाई किस हद तक उतर चुके हैं, इससे हम सब वाक़िफ़ है। यह कैसे भूला जा सकता है कि कठुआ में 8 साल की बच्ची के बलात्कारियों के समर्थन में इन्हीं भाजपाइयों ने तिरंगा लेकर रैली निकाली थी! क्या हम यह भूल जायें कि बिल्किस बानो के बलात्कारियों के रिहाई आदेश को मोदी सरकार के गृह मन्त्रालय द्वारा आधिकारिक तौर पर मंजूरी दी गयी थी और भाजपा नेताओं द्वारा अच्छे “संस्कारी ब्राह्मण” होने के कारण रिहा किये गये इन बलात्कारियों का स्वागत फूल-मालाओं से किया गया था? हम यह कैसे भूल जायें कि जब हाथरस में बलात्कार की घटना हुई तो उसके आरोपियों को बचाने के लिए सवर्णों की ग्यारह गाँवों की पंचायत करने वाले जातिवादियों को भाजपा की योगी सरकार ने पूरा संरक्षण और मदद प्रदान की? इतिहास इस बात का साक्षी है कि भाजपा बलात्कारियों की न सिर्फ़ शरणस्थली रही है बल्कि जन्मस्थली भी रही है। **“संस्कृति”, “संस्कार”, “चाल-चेहरा-चरित्र” की बात करने वाली भाजपा और संघ परिवार के नेताओं की असलियत यही है कि इसमें सारे निकृष्ट कोटि के बदमाश, बलात्कारी, अपराधी, और हत्यारे मौजूद हैं! यही भाजपा के शुचिता और संस्कार का सच है!**

फ़ासीवादी भाजपा सरकार की सत्ता में एक तरफ़ महिलाओं को ही सीमा में और संस्कार में रहने की हिदायत दी जाती है, महिलाओं के ओढ़ने, पहनने, खाने, जीवनसाथी चुनने की आज़ादी पर हमला किया जाता है और दूसरी तरफ़ बलात्कारियों को खुली छूट मिलती है! जब ऐसी पार्टी सत्ता में होगी तो क्या नवधनाढ्य वर्गों, लम्पट टुटपुँजिया वर्गों और नेताओं की बिगड़ी औलादों का दुस्साहस नहीं बढ़ेगा कि वह किसी भी औरत पर हमला करे और उसका बलात्कार करे? **जब इन आपराधिक तत्वों को यह यक़ीन है कि इन अपराधों की उसे कोई सज़ा नहीं मिलेगी, बस उसे भाजपा में शामिल हो जाने की ज़रूरत है, तो ज़ाहिर सी बात है कि स्त्री-विरोधी अपराधों में बढ़ोत्तरी तो होगी ही।** सभी आँकड़े इसी बात की पुष्टि कर रहे हैं। एसोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म्स की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान लोकसभा में क़रीब 43 प्रतिशत सांसदों के विरुद्ध स्त्री-विरोधी अपराधों सहित तमाम तरह के आपराधिक आरोप हैं। **इनमें सबसे बड़ी संख्या भाजपा के सांसदों की है जिनमें से 30 प्रतिशत के विरुद्ध बलात्कार, हत्या, अपहरण जैसे गम्भीर स्त्री–विरोधी अपराधों के आरोप हैं।** राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों की कुल संख्या 2014 में 3,37,922 से बढ़कर 2020 में 3,71,503 हो गयी है। प्रति लाख जनसंख्या पर महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों की संख्या 2014 में 56.3 से बढ़कर 2022 में 66.4 हो गयी है। इसी रिपोर्ट के अनुसार, 2022 में महिलाओं के ख़िलाफ़ कुल अपराधों (जैसे बलात्कार, हत्या, अपहरण और सामूहिक बलात्कार) में उत्तर प्रदेश की योगी सरकार देश में शीर्ष पर है।

यह सच है कि महिलाओं के ख़िलाफ़ अत्याचार सदियों से पूँजीवादी पितृसत्तात्मक भारतीय समाज की एक कड़वी सच्चाई रही है, लेकिन भाजपा सरकार के तहत बलात्कारियों, छेड़छाड़ करने वालों और सिलसिलेवार अपराधियों को जो छूट मिल रही है वह चौंकाने वाली सच्चाई है। निश्चित तौर पर, स्त्रियों की ग़ुलामी क़ायम रहने तक स्त्री विरोधी अपराधों को समाप्त करना सम्भव नहीं है, यदि हमें इन स्त्री-विरोधी अपराधों को ख़त्म करना है, तो हमें उस पूँजीवादी व्यवस्था और समूचे वर्ग समाज के ख़िलाफ़ निर्णायक संघर्ष छेड़ना होगा जो पितृसत्ता, मर्दवाद, स्त्री-पुरुष असमानता के तमाम रूपों को जन्म देता है और उनका फ़ायदा उठाता है। लेकिन हमें इस विशेष परिस्थिति को भी समझना होगा कि जब भी पूँजीपति वर्ग की नग्न तानाशाही क़ायम होगी यानी फ़ासीवादी ताक़तें सत्ता पर क़ाबिज़ होंगी तो औरतों के ख़िलाफ़ अपराधों में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी होगी! अभी भाजपा जैसी फ़ासीवादी पार्टी के शासन में यही हो रहा है। आज फ़ासीवादी सत्ता ने समाज के सबसे आपराधिक, पाशविक, बर्बर और प्रतिक्रियावादी तत्वों व शक्तियों को न सिर्फ़ खुला हाथ दे दिया है बल्कि भाजपा राज्य मशीनरी में अपनी घुसपैठ के ज़रिये उनका खुलेआम संरक्षण कर रही है। असल में स्त्री-विरोधी अपराधों में बढ़ोत्तरी इस फ़ासीवादी उभार का एक अंग है और इसलिए आज हमें अपने इस सबसे बड़े दुश्मन के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए एकजुट, गोलबन्द और संगठित होना होगा।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गाँधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016